भीतर की गाय

इंद्रियों, जागरूकता और मुक्ति का शास्त्रीय विज्ञान

प्रेमयोगी वज्र

© 2026 प्रेमयोगी वज्र
सर्वाधिकार सुरक्षित।
इस पुस्तक का कोई भी भाग लेखक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में—चाहे वह इलेक्ट्रॉनिक हो, यांत्रिक हो, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या किसी अन्य माध्यम से—न तो पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है, न संग्रहित किया जा सकता है और न ही प्रसारित किया जा सकता है। केवल समीक्षाओं या शैक्षणिक लेखन में प्रयुक्त संक्षिप्त उद्धरण इस प्रतिबंध से मुक्त हैं। यह पुस्तक दर्शन और अनुभूति पर आधारित एक चिंतनात्मक कृति है। इसमें प्रयुक्त नाम, कथाएँ और शास्त्रीय संदर्भ प्रतीकात्मक और व्याख्यात्मक रूप में लिए गए हैं। व्यापक रूप से ज्ञात ऐतिहासिक या शास्त्रीय व्यक्तित्वों के अतिरिक्त, किसी भी जीवित या दिवंगत व्यक्ति से समानता मात्र संयोग है।

कानूनी अस्वीकरण (LEGAL DISCLAIMER)

यह पुस्तक केवल शैक्षिक, दार्शनिक और चिंतनात्मक उद्देश्यों के लिए लिखी गई है। इसमें किसी भी प्रकार की चिकित्सकीय, मानसिक, कानूनी, आहार संबंधी या अन्य पेशेवर सलाह प्रदान नहीं की गई है। लेखक न तो चिकित्सक हैं, न मनोवैज्ञानिक, न चिकित्सीय परामर्शदाता, न कानूनी सलाहकार और न ही पोषण विशेषज्ञ। इस पुस्तक की किसी भी सामग्री को पेशेवर परामर्श के विकल्प के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।

जागरूकता, इंद्रियाँ, योग, तंत्र, आहार, जीवनशैली और आध्यात्मिक अभ्यास से संबंधित सभी विचार लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों और दार्शनिक व्याख्याओं पर आधारित हैं, न कि सार्वभौमिक नियमों या निर्देशों पर। पाठकों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने विवेक और जिम्मेदारी का प्रयोग करें तथा स्वास्थ्य, आहार, मानसिक स्थिति या जीवनशैली में किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने से पहले योग्य पेशेवरों से परामर्श लें।

शास्त्रीय कथाएँ, रूपक और सांस्कृतिक प्रतीक—विशेष रूप से गाय, इंद्रियों और जागरूकता से संबंधित—को प्रतीकात्मक और मनोवैज्ञानिक अर्थों में प्रस्तुत किया गया है, न कि शाब्दिक या कट्टर रूप में। लेखक किसी भी प्रकार के अंधविश्वास, भेदभाव या किसी व्यक्ति, समुदाय, विश्वास प्रणाली अथवा पशु के प्रति हानि को बढ़ावा नहीं देता।

भोजन, ऊर्जा साधनाओं या शारीरिक अनुभवों से जुड़े सभी संदर्भ संदर्भ-विशेष और अनुभूति-आधारित हैं। प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिक्रिया भिन्न हो सकती है और किसी भी प्रकार के परिणाम की कोई गारंटी नहीं दी जाती।

इस पुस्तक को पढ़कर पाठक यह स्वीकार करता है कि उसकी व्याख्याओं, निर्णयों और कार्यों की पूर्ण जिम्मेदारी उसी की होगी।

विषय-सूची (Contents)

भूमिका (Introduction)

वह गाय जो कभी पशु नहीं थी

अध्याय 0
अंतर का वृंदावन: कैसे गाय, प्राण और आत्म-जागरूकता निर्विकल्प ध्यान का द्वार खोलते हैं

अध्याय 1
महान भ्रांति
क्यों गाय को केवल पशु मान लिया गया और प्रतीकात्मक समझ कैसे खो गई

अध्याय 2
'गो' शब्द का विस्मृत अर्थ
कैसे भाषा ने इंद्रियों के मनोविज्ञान को कूट रूप में सुरक्षित रखा

अध्याय 3
वसिष्ठ की गाय: अंतर्मुखता की चोरी
कैसे प्रकृति इंद्रियों को बाहर की ओर खींचती है और मनुष्य पतन की ओर जाता है

अध्याय 4
गोपाल कृष्ण: इंद्रियों के स्वामी
क्यों ग्वाले का जीवन सर्वोच्च योग का प्रतीक है

अध्याय 5
इंद्र की गाय: अहंकार बनाम आंतरिक संपदा
कैसे अहंकार इंद्रियों को चुरा लेता है और भीतर की व्यवस्था टूट जाती है

अध्याय 6
कामधेनु: इच्छापूर्ति करने वाला मन
कैसे शुद्ध इंद्रियाँ स्वाभाविक रूप से वास्तविकता की रचना करती हैं

अध्याय 7
गौ-वध: सभ्यताओं का पतन
जब अंतर्मुख जीवन नष्ट होता है तो वास्तव में क्या मरता है

अध्याय 8
वैज्ञानिक समानताएँ: गाय के रूप में तंत्रिका तंत्र
कैसे आधुनिक विज्ञान अनजाने में इस रूपक की पुष्टि करता है

अध्याय 9
आधुनिक भारत के लिए गो-रक्षा का नया अर्थ
कट्टरता से परे एक संतुलित और मानवीय दृष्टि

अध्याय 10
अंतर की गाय की पुनर्स्थापना
बाहरी चराई से भीतर के पोषण तक

गाय की वापसी
अंतिम आश्रय के रूप में जागरूकता

लेखक की टिप्पणी (Author's Note)

भूमिका
वह गाय जो कभी पशु नहीं थी

यह पुस्तक एक सरल लेकिन विचलित कर देने वाले कथन से आरंभ होती है—प्राचीन शास्त्रों में जिस गाय का उल्लेख है, उसका आशय कभी केवल एक पशु से नहीं था। वह एक प्रतीक थी—सटीक, उपयोगी और गहराई से मनोवैज्ञानिक—जो मनुष्य के आंतरिक जीवन की ओर संकेत करती थी। समय के साथ इस प्रतीक को शाब्दिक अर्थों में सीमित कर दिया गया और इसी के साथ न गाय को सही समझा गया, न मनुष्य को।

जिन ऋषियों ने शास्त्रों की रचना की, वे न तो भोले कथाकार थे और न ही मनोरंजन के लिए मिथक गढ़ने वाले। वे मानव शरीर, मन और जागरूकता के सूक्ष्म पर्यवेक्षक थे। प्रयोगशालाओं या आधुनिक उपकरणों के बिना उन्होंने अपने ज्ञान को ऐसे जीवंत प्रतीकों में संहिताबद्ध किया जो पीढ़ियों तक सुरक्षित रह सकें। गाय ऐसा ही एक प्रतीक थी—संयोग से नहीं, बल्कि सावधानीपूर्वक चुनी गई। उसके भौतिक गुण आंतरिक यथार्थ से इतने सटीक रूप से मेल खाते थे कि यह रूपक केवल पढ़ा ही नहीं जा सकता था, बल्कि जिया भी जा सकता था।

संस्कृत में 'गो' का अर्थ केवल गाय नहीं है। इसका अर्थ किरण, इंद्रिय, गति, पृथ्वी, संपदा और प्रकाश भी है। गाय वह दृश्य रूप थी जिसके माध्यम से इंद्रियों की अदृश्य क्रियाओं को समझा जा सकता था। जैसे गाय खेतों में बाहर की ओर चरती है और संध्या होते ही उसे घर लाना पड़ता है, वैसे ही मानव इंद्रियाँ स्वभावतः बाहरी जगत की ओर दौड़ती हैं और उन्हें स्पष्टता, पोषण और विश्राम के लिए भीतर लौटाना आवश्यक होता है। यह कभी किसी पशु की पूजा का विषय नहीं था; यह जीवन जीने की विद्या थी।

किसी बिंदु पर प्रतीकात्मक पठन लुप्त हो गया। योगिक संस्कृति क्षीण हुई। आंतरिक अनुशासन के स्थान पर बाहरी तर्क-वितर्क ने जगह ले ली। परिणामस्वरूप लोग गाय के पक्ष या विरोध में लड़ने लगे, यह जाने बिना कि वह किसका प्रतीक थी। संरक्षण कट्टरता बन गया और विरोध उपहास। दोनों ही मूल तत्व से चूक गए। समस्या गाय कभी नहीं थी; समस्या उसके अर्थ को भूल जाना थी।

यह पुस्तक किसी भी विश्वास-प्रणाली के पक्ष या विपक्ष में तर्क नहीं करती। यह न आस्था की माँग करती है और न ही नकार का प्रचार। यह अवलोकन का आमंत्रण है। यह पाठक से कहती है कि वह अपनी इंद्रियों, अपनी चंचलता, अपनी थकान और अपनी तृप्ति की खोज को देखे। यह एक सरल प्रश्न उठाती है—जब अंतर की गाय खो जाती है, चुरा ली जाती है, दबा दी जाती है या अत्यधिक उत्तेजित हो जाती है, तब क्या होता है? और जब उसे कोमल जागरूकता के साथ देखा जाता है, चरने दिया जाता है और भीतर लौटाया जाता है, तब क्या घटित होता है?

शास्त्रीय कथाओं, अनुभूत अनुभवों, योगिक मनोविज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक समानताओं के माध्यम से यह पुस्तक गाय के रूपक के पीछे छिपी मूल बुद्धि का पुनर्निर्माण करती है। यह दिखाती है कि ऋषियों ने इंद्रिय-संयम, अहंकार, इच्छा, प्राण और मुक्ति की बात बिना किसी अमूर्त भाषा के कैसे कही। यह स्पष्ट करती है कि देवताओं की गायें क्यों खो जाती हैं, गोपाल क्यों पूज्य हैं, कामधेनु कैसे इच्छाएँ पूर्ण करती है, और जब गायों का वध होता है तो सभ्यताएँ क्यों ढह जाती हैं—पहले प्रतीकात्मक रूप में, फिर भौतिक रूप में।

यह अतीत की ओर कोई भावुक वापसी नहीं है, बल्कि वर्तमान के लिए एक व्यावहारिक पुनर्व्याख्या है। इंद्रिय-अतिभार, ध्यान-चोरी, थकान, लत और संघर्ष के इस युग में गाय किसी विवादित पशु के रूप में नहीं, बल्कि अस्तित्व की रक्षा करने वाले मार्गदर्शक के रूप में लौटती है। इस अर्थ में गाय की रक्षा का मतलब है—मनुष्य की अंतर्मुखता, संयम और स्पष्टता की क्षमता की रक्षा।

आगे आने वाले पृष्ठ कोई आदेश नहीं देते। वे एक दृष्टि प्रदान करते हैं। आप सहमत हों या असहमत, यदि आप सजगता से पढ़ेंगे, तो संभव है कि आप अपने जीवन को नए ढंग से देखने लगें—कि आपकी इंद्रियाँ कैसे चरती हैं, कहाँ भटक जाती हैं और कैसे देखभाल के साथ देखे जाने पर लौट आती हैं।

यदि गाय कभी पशु नहीं थी, तो उसे बचाना कभी बल का प्रश्न नहीं था।
वह स्मरण का विषय था।
और स्मरण, जब घटित होता है, तो सब कुछ बदल देता है।

अध्याय 0 – अंतर का वृंदावन: कैसे गाय, प्राण और आत्म-जागरूकता निर्विकल्प ध्यान का द्वार खोलते हैं

वृंदावन: एक स्थान नहीं, बल्कि आत्म-जागरूकता का आंतरिक क्षेत्र

यह समझ बहुत सरल और सीधे रूप में उत्पन्न हुई—किसी दर्शन के रूप में नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव के रूप में। वृंदावन मुझे केवल कथाओं और भक्ति से जुड़ा एक पवित्र नगर नहीं लगा, बल्कि अपने भीतर स्थित आत्म-जागरूकता का एक क्षेत्र प्रतीत हुआ। यह आंतरिक वृंदावन कल्पना से नहीं बनाया जाता, बल्कि तब प्रकट होता है जब जागरूकता शांत, विस्तृत और स्वाभाविक रूप से उपस्थित हो जाती है। इस क्षेत्र में न कुछ थोपना पड़ता है और न कुछ नकारना। यहाँ एक कोमल आंतरिकता होती है, जहाँ जागरूकता बिना संघर्ष के स्वयं में विश्राम करती है। यह विचार कि वृंदावन भीतर है, केवल काव्यात्मक प्रतीक नहीं है, बल्कि एक वास्तविक अनुभूत परिदृश्य का संकेत है, जो तब उपलब्ध होता है जब ध्यान अपने ही स्रोत में स्थिर हो जाता है।

गायें इंद्रियाँ हैं और घास सूक्ष्म आनंद

इस आंतरिक वृंदावन में गायें इंद्रियों के रूप में प्रकट होती हैं। सामान्यतः इंद्रियों को शत्रु या बाधा माना जाता है, पर यहाँ वे गायों की तरह सहज, आदतन और निष्कपट दिखती हैं। वे स्वभाव से पोषण की ओर जाती हैं। ध्यान की आंतरिक अवस्था में यह पोषण स्थूल सुख नहीं, बल्कि सूक्ष्म, शांत, आनंदमय और सात्त्विक विचार होते हैं। ये विचार घास की तरह होते हैं—कोमल, परिष्कृत, अहिंसक और शांति देने वाले। घास ऐसा पोषण है जो उत्तेजित नहीं करता, बल्कि बिना नशा दिए sustenance देता है। जब ध्यान में ऐसे शांत और सात्त्विक विचार उत्पन्न होते हैं, तो वे इंद्रियों को बिना विचलित किए पोषित करते हैं।

आंतरिक घास से बाहरी अन्न और संसारिक कर्म

घास सदा घास नहीं रहती। जब वह बाहर की ओर बढ़ती है, पकती है और कठोर होती है, तो अन्न बन जाती है। अन्न उपयोगी, उत्पादक और आवश्यक है, पर वह अधिक सघन और भारी होता है। इसी प्रकार आंतरिक सूक्ष्म आनंद जब बाहर व्यक्त होता है, तो संसारिक कर्म बन जाता है। बाहरी संसार गलत या हीन नहीं है; वह केवल इंद्रिय-जागरूकता का सघन रूप है। भीतर जो कोमल और प्रवाही है, वही बाहर संरचित और ठोस हो जाता है। स्थूल संसार कठोर अन्न जैसा है, जबकि आंतरिक क्षेत्र जीवित घास की तरह रहता है। यह भेद महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दिखाता है कि संसारिक जीवन और आंतरिक जागरूकता अलग नहीं हैं, बल्कि एक ही वास्तविकता की भिन्न घनत्व अवस्थाएँ हैं।

शांत चराई: बिना बंधन के संवेदन

जब गायें शांति से चरती हैं, तो न वे घास से लड़ती हैं और न ही उससे चिपकती हैं। वे बस खाती हैं। इसी प्रकार जब इंद्रियाँ बिना लालसा और विरोध के कार्य करती हैं, तो संवेदन बना रहता है, पर बंधन नहीं बनता। यही आंतरिक वृंदावन में गायों के चरने का अर्थ है। अनुभव होते हैं, पर जागरूकता विचलित नहीं होती। न इंद्रियों का दमन होता है, न भोग में डूबना। केवल सहज सहभागिता रहती है। इस अवस्था में जीवन सरलता से बहता है और जागरूकता सुरक्षित रहती है।

जब गायों को अन्न दिखाया जाता है और खिलाया जाता है, तो वे उसे पाने के लिए आपस में भिड़ती हैं, संघर्ष करती हैं और उसे लालसा के साथ खाती हैं। वे अशांत और व्यग्र हो जाती हैं। यह अशांति ग्वाले को भी प्रभावित करती है, क्योंकि अब उसे उन्हें सक्रिय रूप से नियंत्रित करना पड़ता है। इसी प्रकार बाहरी संसार में इंद्रियाँ शांत चरने वाली गायों की जगह उग्र पशुओं की तरह व्यवहार करने लगती हैं। वे वस्तुओं

की ओर लालसा और प्रतिस्पर्धा के साथ दौड़ती हैं। इससे आत्म-जागरूकता भी अशांत हो जाती है, क्योंकि उसे सहज साक्षी भाव में टिकने के बजाय लगातार नियंत्रण और रोकथाम करनी पड़ती है।

ग्वाला: साक्षी रूप आत्म-जागरूकता

इस आंतरिक दृश्य में सबसे महत्वपूर्ण उपस्थिति ग्वाले की है। ग्वाला न चरता है, न गाय बनता है, न घास का उपभोग करता है। वह केवल देखता है, हल्के से मार्गदर्शन करता है और स्वयं मुक्त रहता है। यही साक्षी रूप आत्म-जागरूकता है। यह कोई प्रयासपूर्ण निगरानी नहीं है और न ही मानसिक चौकसी। यह सरल उपस्थिति है। जब साक्षी भाव तनावपूर्ण या उद्देश्यपूर्ण हो जाता है, तो आंतरिक वृंदावन अनुशासन का क्षेत्र बन जाता है। जब साक्षी भाव स्वाभाविक होता है, तो वही खेल या लीला बन जाता है। जागरूकता बस जागरूक रहती है।

कृष्ण: स्वयं आत्म-जागरूकता

इस अवस्था में कृष्ण कोई पौराणिक पात्र नहीं रह जाते। हो सकता है कि द्वापर युग में उनका अवतार हुआ हो, क्योंकि शास्त्रों की कथाएँ हमेशा दो अर्थ रखती हैं—एक बाहरी और एक आंतरिक। लेकिन यहाँ कृष्ण स्वयं-चेतना के मूल स्वरूप के रूप में प्रकट होते हैं। वे न मन हैं, न कोई व्यक्तित्व, और न ही कोई अलग-थलग कर्ता। कृष्ण न मन हैं, न व्यक्तित्व, न कोई कर्ता। वे वह सहज आकर्षण-केंद्र हैं, जो तब उत्पन्न होता है जब जागरूकता स्वयं में विश्राम करती है। इसलिए कृष्ण कभी कुछ थोपते नहीं। वे गायों को आदेश नहीं देते; गायें स्वयं आ जाती हैं। आत्म-जागरूकता इंद्रियों को भीतर धकेलती नहीं; अनुकूल परिस्थितियों में संरेखण स्वाभाविक रूप से घटित होता है।

बांसुरी: सूक्ष्म शरीर और सात चक्र

कृष्ण की बांसुरी एक और गहरे स्तर की समझ खोलती है। बांसुरी भीतर से खाली होती है, ठीक वैसे ही जैसे सूक्ष्म शरीर को अहंकार के तनाव से मुक्त होना पड़ता है, ताकि वह एक वाद्य बन सके। यह शून्यता द्वैत-रहित स्थिति से सहारा पाती है। बांसुरी के सात छिद्र शरीर के सात चक्रों के अनुरूप हैं। बिना छिद्रों के स्वर नहीं निकलता, और बिना चक्रों के अभिव्यक्ति नहीं होती। शरीर स्वयं कुछ नहीं करता; वह तभी संगीत बनता है जब जागरूकता की उपस्थिति में प्राण उसमें प्रवाहित होता है। यह शून्यता अभाव नहीं, बल्कि तत्परता है। प्राण विभिन्न चक्रों से होकर बहता है और विभिन्न भावों व अभिव्यक्तियों को जगाता है, जैसे बांसुरी से भिन्न-भिन्न स्वर निकलते हैं।

बांसुरी वादन: प्राण का स्वाभाविक प्रवाह

कृष्ण का बांसुरी बजाना अर्थात जागरूकता का प्राण को सूक्ष्म शरीर से होकर बहने देना। यह न बलपूर्वक प्राणायाम है और न नियंत्रित श्वास। यह सहज, अकुंचित श्वास है। जागरूकता ज़ोर से फूँकती नहीं; वह केवल प्राण को गुजरने देती है। इसी संरेखण से स्वर अत्यंत सामंजस्यपूर्ण बनता है। योग की भाषा में, जब जागरूकता और प्राण एक हो जाते हैं, तो संपूर्ण तंत्र सुसंगत हो जाता है। जब जागरूकता और प्राण का संरेखण होता है, तो प्राण इतना सूक्ष्म हो जाता है कि वह शून्य-सदृश जागरूकता के समान हो जाता है। उसका सूक्ष्म संगीत इतना परिष्कृत होता है कि स्थूल संसार के अन्न पर जीने वाली इंद्रियाँ उसे छोड़कर आंतरिक वृंदावन में बांसुरी बजाते कृष्ण की ओर लौट आती हैं और फिर से घास चरने लगती हैं। जैसे-जैसे श्वास बांसुरी से होकर लगभग शून्य-सी हो जाती है, इंद्रियाँ इतनी गहराई से शांत हो जाती हैं कि अंततः स्वयं शून्य में विलीन हो जाती हैं।

गायों का घास छोड़ना: निर्विकल्प में प्रवेश

जब बांसुरी श्वास-रहित-सी अनुभूति के साथ बजती है, तो गायें घास भी छोड़कर कृष्ण की ओर बढ़ती हैं। इसमें सबसे गहरा योगिक अर्थ निहित है। घास स्वयं सूक्ष्म आनंद और सात्त्विक सुख का प्रतीक है। गायों का घास छोड़ना यह दर्शाता है कि इंद्रियाँ परिष्कृत आनंद को भी त्याग देती हैं। यह दमन नहीं है; यह आत्म-विस्मरण है। यही निर्विकल्प है। यहाँ न कोई विषय रहता है, न भोक्ता, न आनंद का दावा। "मैं आनंद का अनुभव कर रहा हूँ"—यह विचार भी लुप्त हो जाता है। केवल अवशोषण रह जाता है।

निर्विकल्प को पकड़ा क्यों नहीं जा सकता

यह अवस्था इच्छा से बनाए नहीं रखी जा सकती। जैसे ही यह विचार आता है—"मैं निर्विकल्प में हूँ"—अवशोषण टूट जाता है और इंद्रियाँ फिर चरने लगती हैं। जागरूकता को इससे कोई आपत्ति नहीं। कृष्ण बांसुरी बजाते रहते हैं। आत्म-जागरूकता अवस्थाओं से चिपकती नहीं। वह आने-जाने देती है। इसलिए निर्विकल्प प्रायः क्षणिक होता है, पर गहरी समझ छोड़ जाता है।

नदी-तलों और बाढ़-मैदानों में प्रत्यक्ष अनुभव

ये समझ केवल सैद्धांतिक नहीं हैं। मैं बार-बार विस्तृत बाढ़-मैदानों में फैले नदी-तलों के पास बैठता हूँ। वहाँ भूमि विविध आकारों और रूपों के पत्थरों से ढकी होती है, जो प्राकृतिक रूप से घिसे हुए और परतदार होकर किसी स्वागत-कारी कालीन की तरह लगते हैं। भूमि की खुली विशालता, स्थान की शांति और प्रकृति की धीमी लय एक सहज आंतरिक स्थिरता उत्पन्न करती है। ऐसे स्थानों पर आवारा पशु स्वाभाविक रूप से घूमते और चरते रहते हैं।

गायों की उपस्थिति और सहज निर्विकल्प ध्यान

इन परिवेशों में निर्विकल्प ध्यान बिना प्रयास के उत्पन्न हो जाता है। यह बार-बार का अनुभव एक महत्वपूर्ण बात प्रकट करता है—चरती हुई गायें केवल योगिक प्रक्रियाओं का प्रतीक नहीं हैं; स्वयं गायों की उपस्थिति मन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। वे तंत्रिका तंत्र को शांत करती हैं। उनकी स्थिर, अहिंसक ऊर्जा आंतरिक मौन को सहारा देती है। मन वही प्रतिबिंबित करता है जो वह देखता है। जब जागरूकता ऐसे प्राणियों के बीच विश्राम करती है जिनके भीतर कोई आंतरिक संघर्ष नहीं, तो वह स्वयं को अधिक सहजता से पहचान लेती है।

ऋषियों ने शास्त्रीय कथाएँ इस प्रकार रचीं कि उनमें भौतिक और प्रतीकात्मक—दोनों अर्थ निहित हों, यद्यपि प्रतीकात्मक अर्थ प्रधान है। भौतिक स्तर आकस्मिक नहीं है; वह आंतरिक शिक्षा को सहारा देता है और सुदृढ़ करता है। उदाहरण के लिए, यदि केवल चराई ही संदेश होती, तो अन्य चरने वाले पशु भी चुने जा सकते थे। गाय को विशेष रूप से इसलिए चुना गया क्योंकि उसके भौतिक गुण—उसकी शांति, अहिंसा, पोषणकारी प्रकृति और कठोर घास को जीवनदायी दूध में बदलने की क्षमता—प्रतीकात्मक शिक्षा को प्रत्यक्ष और अनुभूत बना देते हैं। इससे रूपक अमूर्त न रहकर दैनिक जीवन में जिया जा सकता है।

प्रकृति, पशु और जागरूकता का समर्थन

नदी, पत्थर, खुले मैदान और चरती हुई गायें मिलकर ऐसा वातावरण बनाते हैं जहाँ प्राण सहजता से बहता है और जागरूकता संकुचित नहीं होती। यह दर्शाता है कि योगिक बोध केवल आंतरिक साधना नहीं, बल्कि

जीवंत प्रकृति के साथ एक अनुनाद भी है। बाहरी परिदृश्य आंतरिक परिदृश्य को प्रतिबिंबित और समर्थित करता है।

जागरूकता का खेल: वृंदावन

अंततः वृंदावन स्वयं को जागरूकता की लीला के रूप में प्रकट करता है। इंद्रियाँ बिना अशांति के सूक्ष्म आनंद पर चरती हैं। संसारिक कर्म आंतरिक शांति से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं, जैसे घास से अन्न उत्पन्न होता है। प्राण शून्य-देह में बांसुरी के संगीत की तरह बहता है। संरेखण गहराने पर इंद्रियाँ आनंद को भी त्याग देती हैं। जागरूकता शांत ग्वाले की तरह अछूती और मुक्त रहती है। जब जागरूकता शून्यता से होकर श्वास लेती है, तो इंद्रियाँ मौन में विलीन हो जाती हैं और निर्विकल्प सहज रूप से प्रकट होता है। यह न मिथक है, न कल्पना, न उधार लिया हुआ सिद्धांत। यह प्रत्यक्ष योगिक शरीर-विज्ञान है—जिया हुआ, देखा हुआ और वृंदावन की कालातीत भाषा में अभिव्यक्त।

अध्याय 1 – महान भ्रांति

यह भ्रांति घृणा से आरंभ नहीं हुई थी। इसका आरंभ विस्मृति से हुआ था—एक धीमी, मौन विस्मृति, जो सदियों में इतनी सहजता से घटित हुई कि किसी को वह क्षण दिखाई ही नहीं दिया जब शब्दों से अर्थ फिसल गया और प्रतीक ठोस वस्तुओं में बदल गए। जब तक लोग गाय के लिए लड़ने लगे, तब तक गाय पहले ही खो चुकी थी।

प्रेमयोगी ने इस सत्य को पहले पुस्तकों से नहीं, बल्कि जीवन से समझा। उन्होंने हर जगह एक ही विरोधाभास देखा—लोग श्रद्धा से गाय के चरण छूते थे और वही लोग उसी गाय के नाम पर चिल्लाते, मारते, विभाजित होते और क्रोध से जलते थे। गाय स्वयं शांत खड़ी रहती, घास चबाती हुई, इस बात से अनजान कि वह मानव भ्रम का केंद्र बन चुकी है। श्रद्धा और हिंसा के बीच कहीं अर्थ टूट गया था। प्रेमयोगी ने उस टूटन को अपने ही हृदय में एक दरार की तरह महसूस किया। यदि गाय सचमुच पवित्र थी, तो वह मनुष्य को पवित्र क्यों नहीं बना पा रही थी? गाय की रक्षा से शांति के बजाय अशांति क्यों बढ़ रही थी? यह प्रश्न उनके भीतर एक नाचते हुए सर्प की तरह बना रहा—चलता हुआ, लहराता हुआ, सोने से इंकार करता हुआ।

पहला संकेत तब मिला जब उन्होंने एक सरल तथ्य पर ध्यान दिया—प्राचीन लोग आधुनिक लोगों की तरह नहीं सोचते थे। वे संसार का वर्णन वैसे नहीं करते थे जैसे हम करते हैं। वे निर्देश पुस्तिकाएँ नहीं लिखते थे; वे जीवंत प्रतीक रचते थे। जब उन्हें मनोविज्ञान सिखाना होता था, तो वे वन का उपयोग करते थे। जब ऊर्जा की बात करनी होती थी, तो नदियों का सहारा लेते थे। जब इंद्रियों को समझाना होता था, तो वे गाय का प्रतीक चुनते थे। पर आधुनिक दृष्टि, जो केवल वस्तुओं को देखना जानती है, अर्थों को नहीं, उन प्रतीकों को शाब्दिक तथ्य मानकर पढ़ने लगी। उसी क्षण रूपक मर गया। और जब रूपक मर जाता है, तो धर्म शोर बन जाता है।

योगिक संस्कृति में भीतर और बाहर के बीच कोई कठोर रेखा नहीं थी। शरीर एक ब्रह्मांड था और ब्रह्मांड एक शरीर। जो भीतर घटता था, वही बाहर परिलक्षित होता था, और जो बाहर घटता था, वह भीतर के लिए शिक्षा बनता था। गाय कभी केवल एक पशु नहीं थी। वह एक चलता-फिरता श्यामपट थी, जिस पर जीवन का विज्ञान देह के माध्यम से लिखा गया था। पर जब योगिक संस्कृति ढह गई—जब आंतरिक साधनाएँ लुप्त हो गईं, जब प्रत्याहार अनुभव न रहकर केवल शब्द बन गया—तो प्रतीक बिना कुंजी के रह गए। लोगों ने खोल तो संभाल लिए, पर बीज खो दिया।

प्रेमयोगी ने यह तब और स्पष्ट देखा जब उन्होंने प्राचीन पठन और आधुनिक तर्क की तुलना की। एक पक्ष चिल्लाता था—"गाय माता है।" दूसरा पक्ष चिल्लाता था—"गाय एक पशु है।" दोनों ही एक ही तरह से गलत थे, क्योंकि दोनों सतह पर अटके हुए थे। एक पक्ष ने गाय को भावनात्मक बना दिया, दूसरे ने जैविक। किसी ने उसे प्रतीकात्मक नहीं समझा, किसी ने योगिक नहीं बनाया। इस प्रकार दोनों ही मूल बात से पूरी तरह चूक गए।

गाय उस दिन केवल पशु बनकर रह गई, जिस दिन मनुष्य यह भूल गया कि वह स्वयं इंद्रियों द्वारा संचालित होता है। ऐसी इंद्रियाँ, जो चरती हुई गायों की तरह बाहर की ओर दौड़ती हैं—कभी विश्राम नहीं करतीं, सदा कुछ अधिक हरा खोजती रहती हैं। आँखें रूपों पर चरती हैं, कान ध्वनियों पर, जीभ स्वाद पर, त्वचा स्पर्श पर और मन विचारों पर। यदि इन गायों की रक्षा न की जाए, तो वे भटक जाती हैं। यदि वे भटकें, तो चुरा ली जाती हैं। और जब वे चुरा ली जाती हैं, तो मनुष्य भीतर से खाली हो जाता है। यह प्रत्येक प्राचीन दृष्टा जानता था। इसलिए उन्होंने कभी यह नहीं कहा—"इंद्रियों को नियंत्रित करो।" उन्होंने कहा—"गायों की रक्षा करो।"

योगिक संस्कृति के पतन के साथ इस अर्थ को पढ़ने की क्षमता भी समाप्त हो गई। योग कभी केवल व्यायाम नहीं था। वह आंतरिक कृषि था—चरती हुई इंद्रियों को दूध देने वाली इंद्रियों में बदलने का विज्ञान। जब यह विज्ञान लुप्त हुआ, तो गाय अकेली खड़ी रह गई—गलत समझी गई, अंधाधुंध बचाई गई, अंधाधुंध आक्रांत की गई। लोग प्रतीक के लिए लड़ने लगे, क्योंकि उन्होंने वास्तविकता खो दी थी।

प्रेमयोगी ने यही पैटर्न हर जगह दोहराते देखा। लोग परंपराओं की रक्षा बिना समझे करते थे। दूसरे लोग परंपराओं पर हमला बिना पढ़े करते थे। और दोनों ही स्थितियों में गाय पीड़ित होती थी। वह एक राजनीतिक वस्तु बन गई, एक सामाजिक हथियार, एक भावनात्मक अवशेष। पर वह अब शिक्षक नहीं रही, दर्पण नहीं रही, आंतरिक अनुशासन की स्मृति नहीं रही।

तभी प्रेमयोगी ने वह वाक्य लिखा, जो इस पुस्तक की रीढ़ बन गया, वह धुरी जिसके चारों ओर सब कुछ घूमता है—
गाय पवित्र नहीं है क्योंकि वह एक पशु है।
पशु पवित्र है क्योंकि उसमें गौ-तत्त्व प्रकट होता है।

गौ-तत्त्व सरल है, पर जब उसे समझ लिया जाए तो वह भयावह रूप से शक्तिशाली हो जाता है। गौ का अर्थ है इंद्रियाँ। गौ का अर्थ है प्राण। गौ का अर्थ है आंतरिक संपदा। गौ का अर्थ है मनुष्य की वह क्षमता, जिससे वह कच्चे अनुभव को पोषण में बदल सकता है—जैसे गाय घास को दूध में बदल देती है। जब इंद्रियाँ शांत, अनुशासित और भीतर की स्वामित्व में होती हैं, तो वे स्पष्टता, करुणा, स्थिरता और विवेक उत्पन्न करती हैं। वही दूध है। जब इंद्रियाँ बिखरी हुई, हिंसक और केवल बाहर की ओर होती हैं, तो वे चिंता, लत और संघर्ष उत्पन्न करती हैं। वही बंजर भूमि है।

इसी कारण पशु-संरक्षण केवल आंतरिक संरक्षण की छाया है। भीतर की गाय की रक्षा किए बिना बाहरी गाय की रक्षा करना वैसा ही है जैसे मंदिर की रखवाली करना और भीतर देवता को भूखा छोड़ देना। वह धार्मिक दिखता है, पर भीतर से खोखला होता है। वह परिवर्तन नहीं, केवल शोर पैदा करता है। प्राचीन लोग यह जानते थे, इसलिए उन्होंने कभी नैतिकता को योग से, पारिस्थितिकी को मनोविज्ञान से, या गाय को चेतना से अलग नहीं किया। गाय कभी अकेली नहीं थी; वह सदा जीवन-प्रणाली के एक पूर्ण तंत्र का अंग थी।

'गो' शब्द स्वयं पूरी कथा कह देता है, यदि कोई सुनने को तैयार हो। गो का अर्थ गाय है, पर साथ ही किरण, इंद्रिय, पृथ्वी, संपदा, गति और ज्ञान भी है। संभव है कि अंग्रेज़ी का "go" शब्द, जिसका अर्थ बाहर की ओर फैलना या चल पड़ना है, इसी चरती हुई बाह्य प्रवृत्ति से जुड़ा हो। एक शब्द, अनेक स्तर—सब भीतर की ओर संकेत करते हुए। जब शास्त्र गो-रक्षा की बात करते हैं, तो वे कसाइयों या कार्यकर्ताओं से नहीं बोलते। वे साधक से बोलते हैं। वे कहते हैं—अपनी इंद्रियों की रक्षा करो, अपने प्रकाश की रक्षा करो, अपनी आंतरिक पृथ्वी की रक्षा करो, अपनी जागरूकता की संपदा की रक्षा करो। बाहर की गाय भीतर की गाय की स्मृति है। जब स्मृति चली जाती है, तो अनुशासन चला जाता है। जब अनुशासन चला जाता है, तो संस्कृति ढह जाती है।

प्रेमयोगी ने यह पतन ग्रंथों में नहीं, आधुनिक जीवन में देखा। लोगों के पास सब कुछ था, फिर भी कुछ भी उन्हें तृप्त नहीं करता था। उनकी इंद्रियाँ अधिक खा रही थीं, पर पोषित नहीं हो रही थीं। आँखें बहुत कुछ देख रही थीं, कान बहुत कुछ सुन रहे थे, मन बहुत कुछ खपा रहा था। पर कुछ भी दूध नहीं बन रहा था। सब कुछ बेचैनी में बदल रहा था। यही होता है जब गायें बिना ग्वाले के चरती हैं। और इसलिए प्राचीन प्रतीक फिर से खड़ा था—मौन, धैर्यवान, पढ़े जाने की प्रतीक्षा में।

गाय को लेकर होने वाला संघर्ष, प्रेमयोगी ने समझा, गाय के बारे में था ही नहीं। वह उस सभ्यता की चीख थी जिसने अपनी आंतरिक धुरी खो दी थी। एक पक्ष इसलिए चिल्ला रहा था क्योंकि उसे हानि का आभास था, पर समझ नहीं थी। दूसरा इसलिए चिल्ला रहा था क्योंकि वह सतह देख पा रहा था, गहराई नहीं। दोनों एक ही घाव पर प्रतिक्रिया कर रहे थे। गाय बहुत पहले चुरा ली गई थी—शत्रुओं द्वारा नहीं, विस्मृति द्वारा।

यह पुस्तक उस गाय को वापस लाने के लिए लिखी गई है।
गौशालाओं में नहीं, समझ में।
राजनीति में नहीं, चेतना में।
भय में नहीं, स्पष्टता में।

जब यह भ्रांति दूर हो जाती है, तो शेष सब सरल हो जाता है। गाय कोई समस्या नहीं रह जाती जिसे हल करना हो। वह एक सत्य बन जाती है जिसे जिया जाना है। क्रोध गिर जाता है। भ्रम गिर जाता है। तर्क गिर जाता है। जो शेष रहता है, वह एक शांत पहचान है—कि प्राचीन लोग पशुओं की पूजा नहीं कर रहे थे, वे मानवता की रक्षा कर रहे थे।

पूजा स्वयं गलत नहीं है, पर जब पूजा अपना उद्देश्य भूल जाती है, तभी भ्रम आरंभ होता है। जब ईश्वर हर कण में है, तो हर कण की पूजा संभव है, और गाय की और भी अधिक, क्योंकि वह इंद्रियों को शुद्ध करने वाली जागरूकता का प्रतीक है। इस अर्थ में पूजा सार्थक है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब प्रतीक को ही वास्तविकता समझ लिया जाता है—जब गाय को चेतना-शुद्धि की शक्ति मान लिया जाता है, न कि उसकी स्मृति के रूप में। प्रतीक की पूजा, यदि वह आंतरिक साधना की ओर इंगित करे, तो सही है; पर प्रतीक की पूजा करते हुए उस आंतरिक कर्म को भूल जाना, ठहराव को जन्म देता है। जब लक्ष्य प्रतीक बन जाता है और वास्तविक लक्ष्य खो जाता है, तो ऊर्जा, समय और बुद्धि व्यर्थ हो जाते हैं, और न मनुष्य आध्यात्मिक रूप से बढ़ता है, न सांसारिक रूप से। प्रतीक का अर्थ लौटाने से पूजा की शक्ति भी लौट आती है, क्योंकि वास्तविक परिवर्तन सदा भीतर ही घटित होना था।

कुछ समर्पित गौपालक कहते हैं कि गाय विशेष या दिव्य है क्योंकि वह शांति, संतोष और प्रेम की अनुभूति कराती है। पर कौन-सा पशु प्रेम नहीं दिखाता जब उसे खिलाया जाए और उसकी देखभाल की जाए? और किस पशु की सेवा से शांति और संतोष नहीं उत्पन्न होता? यह सत्य है कि गाय स्वभाव से अहिंसक और सात्त्विक होने के कारण ये भाव उसकी उपस्थिति में अधिक गहराई से प्रकट होते हैं। पर वास्तव में ये भाव मनुष्य के हृदय से उत्पन्न होते हैं, पशु से नहीं। गाय उन्हें कोमलता से प्रतिबिंबित करती है, पर शांति का अनुभव सेवा के कर्म से आता है, न कि सेवा की वस्तु से। इस भावनात्मक प्रतिक्रिया को आध्यात्मिक सत्य मान लेना फिर से प्रतीक को लक्ष्य बना देता है और गहरा अर्थ खो जाता है।

प्रेमयोगी ने यह सब मनाने के लिए नहीं लिखा। उन्होंने इसे स्मरण कराने के लिए लिखा। क्योंकि स्मरण ही पर्याप्त है। गाय कभी खोई नहीं थी। वह केवल दिखाई नहीं दे रही थी। और जब वह फिर दिखाई देती है—आँखों से नहीं, जागरूकता से—तो भ्रम का सर्प नाचना बंद कर देता है। वह विश्राम करता है। और उस मौन में प्राचीन ज्ञान फिर से श्वास लेने लगता है।

अध्याय 2 – गो: एक शब्द का भूला हुआ अर्थ

प्रेमयोगी ने एक बार साधारण लोगों की बातचीत सुनते हुए कुछ अजीब-सा देखा। लोग कहते थे, “मेरा मन इधर-उधर चला जाता है।” वे कहते थे, “थोड़ा बाहर जाकर ताज़ा होना है।” वे कहते थे, “विचार चलते ही रहते हैं।” पर कोई यह नहीं कहता था, “मेरा मन ठहरता है।” कोई यह नहीं कहता था, “मेरी इंद्रियाँ विश्राम करती हैं।” ‘जाना’ या ‘चलना’ शब्द हर जगह था—भाषा में एक अनजाने स्वीकारोक्ति की तरह बहता हुआ। मनुष्य के भीतर कुछ ऐसा था जो सदा बाहर की ओर जा रहा था, बिखर रहा था, केंद्र से दूर होता जा रहा था। तभी प्रेमयोगी को समझ आया कि प्राचीन ऋषियों ने प्रतीक मनमाने ढंग से नहीं गढ़े थे। उन्होंने केवल वही नाम दिया था, जिसे वे स्वयं अपने भीतर बार-बार घटते हुए देख रहे थे।

संस्कृत में ‘गो’ एक छोटा-सा शब्द है, पर उसका अर्थ बहुत विशाल है। इसका अर्थ गाय है, यह तो है ही, पर इसके साथ-साथ यह किरण, इंद्रिय, ज्ञान, गति और यहाँ तक कि पृथ्वी का भी बोध कराता है। आधुनिक मन को यह उलझा हुआ लगता है, क्योंकि वह चाहता है कि एक शब्द का केवल एक ही अर्थ हो, एक ही वस्तु हो, एक ही कार्य हो। पर प्राचीन दृष्टि खंडों में नहीं देखती थी। वह वास्तविकता को एक सतत प्रवाह के रूप में देखती थी। सूर्य से बाहर की ओर जाती किरणें, मन से बाहर की ओर जाती इंद्रियाँ, चरने के लिए बाहर जाती गायें और विषयों की ओर दौड़ते विचार—ये सब उन्हें अलग-अलग वस्तुएँ नहीं लगती थीं। ये एक ही गति के भिन्न-भिन्न रूप थे। उसी गति को ‘गो’ कहा गया।

यही पहला सूत्र था जो प्रेमयोगी के हाथ लगा। गाय को प्रतीक इसलिए नहीं चुना गया था कि लोग पशुओं से प्रेम करते थे, बल्कि इसलिए चुना गया था कि उसका व्यवहार इंद्रियों जैसा ही था। वह हर सुबह बाहर जाती थी। भटकती थी। खोजती थी। ऊर्जा को केंद्र से दूर खींच ले जाती थी। और यदि उस पर ध्यान न रखा जाए, तो वह खो जाती थी। इंद्रियाँ भी यही करती हैं। वे स्वभाव से बाहर की ओर उन्मुख होती हैं। आँखें रूप चाहती हैं, कान ध्वनि चाहते हैं, जीभ स्वाद चाहती है, त्वचा स्पर्श चाहती है, मन कथाएँ चाहता है। इसके लिए किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती; यह स्वचालित है। आवश्यकता केवल रक्षा की होती है।

इसी कारण शास्त्र न तो इंद्रियों को मारने की प्रशंसा करते हैं और न ही उन्हें खुली छूट देने की। वे उनकी रक्षा की बात करते हैं। शब्द हमेशा ‘रक्षा’ होता है, विनाश नहीं। गाय की रक्षा करो। इंद्रियों की रक्षा करो। किरणों की रक्षा करो। आंतरिक संपदा की रक्षा करो। रक्षा का अर्थ भय नहीं है, न ही हिंसा। उसका अर्थ है देखभाल, जागरूकता, धैर्य और उपस्थिति। इसका अर्थ यह है कि कुछ मूल्यवान है, नाजुक है और उस पर ध्यान देना आवश्यक है।

प्रेमयोगी को याद आया कि युवावस्था में उनकी अपनी इंद्रियाँ भी बिना ग्वाले के झुंड की तरह बिखर गई थीं। मन विचार से विचार, इच्छा से इच्छा, महत्वाकांक्षा से महत्वाकांक्षा पर कूदता रहता था। कुछ भी इतना नहीं ठहरता था कि दूध बन सके। हर चीज़ चखी जाती थी और छोड़ दी जाती थी। बेचैनी सामान्य लगने लगी थी और उन्होंने मान लिया था कि यही जीवन है। बहुत बाद में, जब वे शांति से बैठने लगे, तब उन्हें समझ आया कि मन समस्याओं के कारण अशांत नहीं था, बल्कि चरने के कारण था। वह दशकों से बिना रुके चर रहा था। गाय को कभी घर लौटाया ही नहीं गया था।

पुराने गाँवों में गाय से अधिक महत्व ग्वाले का होता था। गाय जानती थी कहाँ जाना है, ग्वाला जानता था कब रुकना है। वह पीछे-पीछे चलता, देखता, सुधार करता, पुकारता। वही ग्वाला जागरूकता है। बल नहीं, दमन नहीं—केवल उपस्थिति। जब जागरूकता इंद्रियों के पीछे चलती है, तो वे चरती हैं पर खोती नहीं हैं। जब जागरूकता सो जाती है, तो वे ऐसे खेतों में भटक जाती हैं जो उनके नहीं होते, और फिर संकट शुरू होता है।

इसीलिए सभी आध्यात्मिक परंपराओं के ग्रंथ एक ही बात को अलग-अलग शब्दों में दोहराते हैं—इंद्रियों की रक्षा करो, उन्हें एकत्र करो, भीतर की ओर मोड़ो, लौट आओ। ये सब एक ही चित्र के अनुवाद हैं—रात होने से पहले गायों को घर लौटा लाओ। क्योंकि रात अज्ञान है। और अंधकार में गायें चुरा ली जाती हैं।

चराई का मैदान विषयों की दुनिया है। वह बुरा नहीं है। घास बुरी नहीं है। जीवन के लिए मैदान आवश्यक है। पर असीम चराई गाय और मैदान—दोनों को नष्ट कर देती है। आधुनिक जीवन यही बन गया है—असीम चराई, अंतहीन उपभोग। आँखें जो कभी विश्राम नहीं करतीं, कान जो कभी शांत नहीं होते, मन जो कभी चबाना बंद नहीं करता। इसलिए आश्चर्य नहीं कि चिंता हमारे युग की बीमारी बन गई है। लोग सब कुछ पाने के बाद भी खाली क्यों महसूस करते हैं—क्योंकि वे प्लास्टिक की घास चर रहे हैं। वह मुँह तो भर देती है, पर पोषण नहीं देती।

प्राचीन 'गो' शब्द में यह पूरी मनोविज्ञान एक ही अक्षर में समाया हुआ था। इसलिए वह हर जगह प्रकट होता है। सूर्य की किरणें 'गो' कहलाती हैं क्योंकि वे बाहर जाती हैं। इंद्रियाँ 'गो' हैं क्योंकि वे बाहर जाती हैं। गाय 'गो' है क्योंकि वह बाहर जाती है। ज्ञान भी 'गो' है क्योंकि वह अज्ञान से बाहर की ओर फैलता है। पृथ्वी भी 'गो' है क्योंकि वह सभी बाह्य गतियों को धारण करती है। एक ही सिद्धांत, भिन्न-भिन्न रूपों में, ताकि कोई भूले नहीं। फिर भी भूल हो गई।

प्रेमयोगी अक्सर सोचते थे कि कोई सभ्यता इतने सारे अनुष्ठान कैसे याद रख सकती है और इतना सरल अर्थ कैसे भूल सकती है। उत्तर पीड़ादायक था, पर स्पष्ट था—जब आंतरिक साधना लुप्त हो जाती है, तो प्रतीक बोझ बन जाते हैं। लोग शब्दों को पकड़ लेते हैं, अनुभव खो देते हैं। वे 'गो-रक्षा' का उच्चारण करते हैं, बिना कभी किसी इंद्रिय को देखे। वे गायों के लिए आश्रय बनाते हैं, जबकि उनका मन उन्मुक्त दौड़ रहा होता है। वे पशु की रक्षा करते हैं, पर रूपक को छोड़ देते हैं। और फिर आश्चर्य करते हैं कि शांति क्यों नहीं आती।

यहीं भ्रांति त्रासदी बन जाती है। क्योंकि जब रूपक खो जाता है, तो लोग या तो अंधी पूजा करते हैं या हिंसक अस्वीकृति। कुछ कहते हैं, "गाय दिव्य है," और सोचना बंद कर देते हैं। कुछ कहते हैं, "गाय तो बस एक पशु है," और सुनना बंद कर देते हैं। दोनों ही एक ही हानि की प्रतिक्रियाएँ हैं। दोनों एक ही खोई हुई कुंजी का परिणाम हैं।

प्रेमयोगी ने यह अपने भीतर भी देखा, जब उन्होंने चराई को समझे बिना मौन थोपने की कोशिश की। जितना वे दबाते, उतना ही मन विद्रोह करता। शांति तब आई, जब उन्हें समझ आया कि इंद्रियों को दंड नहीं, दिशा चाहिए। गाय मारने से चरना नहीं छोड़ती; वह तब लौटती है, जब ग्वाला पुकारता है। जागरूकता वही पुकार है।

विश्वविद्यालय के दिनों में प्रेमयोगी ने एक बार अपने मन को बलपूर्वक दबाने की कोशिश की, जब वह अपनी प्रेयसी की ओर जाता था। जितना उन्होंने दबाया, उतना ही मन विद्रोही होकर उन्हीं चित्रों से भर गया, जिनसे वे बचना चाहते थे। बाद में उन्हें समझ आया कि इंद्रियों को वहाँ जाने देना बेहतर होता, पर जागरूकता के मार्गदर्शन में। उस आयु में, हालांकि, बिना अनुशासन के उन्हें खुला छोड़ देना भविष्य के लिए घातक होता। अंधेरे में गायें खो देना, अस्थायी रूप से उन्हें भीतर रोक लेने से अधिक हानिकारक है। सर्वोत्तम मार्ग सदा यही है कि इंद्रियों को पूर्ण जागरूकता, संयम, सामाजिक विवेक, अनुशासन और मानवीय मूल्यों के साथ चरने दिया जाए। पर कभी-कभी, बुरी संगति, हानिकारक वातावरण या कमजोर आंतरिक शक्ति के कारण जागरूकता इंद्रियों के साथ नहीं चल पाती, जैसा प्रेमयोगी के साथ उनकी शिक्षा के दिनों में हुआ। जब बाहर जंगली पशु हों, तूफ़ान हों या खतरनाक मौसम हो, तो बुद्धिमान ग्वाला गायों को भीतर ही रखता है। यह दमन नहीं, रक्षा है।

इसीलिए हर आध्यात्मिक ग्रंथ किसी न किसी रूप में गो-रक्षा की बात करता है। इसलिए नहीं कि प्राचीन लोग केवल किसान थे, बल्कि इसलिए कि वे गहरे मनोवैज्ञानिक थे। वे जानते थे कि यदि तुम किसी बच्चे को गाय की रक्षा सिखाते हो, तो तुम उसे ध्यान की रक्षा सिखा रहे हो। यदि तुम समाज को गाय की रक्षा सिखाते हो, तो तुम उसे उसकी आंतरिक संपदा की रक्षा सिखा रहे हो। प्रतीक हटा दो, तो शिक्षा अमूर्त और कमजोर हो जाती है। गाय ने मनोविज्ञान को दृश्य बना दिया। वह चलती थी, साँस लेती थी, खाती थी और लौट आती थी—मनुष्य को दिखाती हुई कि भीतर क्या घट रहा है।

आधुनिक युग की त्रासदी यह है कि लोग सोचते हैं कि प्राचीन लोग भोले थे। वास्तव में वे अत्यंत सटीक थे। उन्होंने जीवन को ही पाठ्य-पुस्तक बनाया। और गाय उनकी सबसे स्पष्ट आकृतियों में से एक थी। वह इंद्रियों के बाह्य आकर्षण, जागरूकता की आवश्यकता, उपेक्षा के खतरे और वापसी की शांति—सब कुछ चार पैरों पर चलते हुए दिखा देती थी।

जब प्रेमयोगी ने यह देखा, तो उन्हें समझ आया कि 'गो' शब्द मरता क्यों नहीं। वह भाषा में जीवित है, क्योंकि समस्या जीवन में जीवित है। मनुष्य अब भी जा रहा है। मन अब भी बिखर रहा है। इंद्रियाँ अब भी चर रही हैं। और ग्वाले की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है। रूपक असफल नहीं हुआ; पाठक असफल हुए।

यह अध्याय किसी शब्द को बचाने के लिए नहीं है। यह देखने के एक ढंग को बचाने के लिए है। जब 'गो' का अर्थ पुनः स्थापित हो जाता है, तो शेष सब अपने-आप संरेखित हो जाता है। गाय फिर से पवित्र हो जाती है—वस्तु के रूप में नहीं, स्मृति के रूप में। इंद्रियाँ शत्रु नहीं, संपदा बन जाती हैं। जागरूकता प्रयास नहीं, मार्गदर्शन बन जाती है। और प्राचीन निर्देश आधुनिक भाषा में स्पष्ट हो जाता है—यदि शांति चाहिए, तो हर जगह जाना बंद करो। गाय को घर ले आओ।

जब यह समझ आ जाती है, तो गाय विवाद का विषय नहीं रहती। वह राजनीतिक नहीं रहती। वह भावनात्मक नहीं रहती। वह शैक्षिक बन जाती है। और जो सभ्यता अपने प्रतीकों को फिर से पढ़ना सीख लेती है, उसे उनकी रक्षा के लिए लड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह उन्हें जीने लगती है।

अध्याय 3 – वसिष्ठ की गाय: अंतर्मुखता की चोरी

प्रेमयोगी ने अपने जीवन में चोरी हुई गाय की कथा अनेक बार पढ़ी थी, पर अधिकांश लोगों की तरह उन्होंने भी प्रारंभ में उसे केवल एक कथा के रूप में ही पढ़ा। बहुत बाद में वह कथा उन्हें पढ़ने लगी। सच्चे शास्त्र ऐसे ही होते हैं। वे प्रतीक्षा करते हैं। वे तब तक मौन रहते हैं, जब तक पाठक इतना परिपक्व न हो जाए कि लिखे हुए से परे का अर्थ सुन सके।

कहानी सतह पर बहुत सरल है। महर्षि वसिष्ठ की दिव्य गाय को वसु नामक देवता चुरा लेते हैं, जिनका नेतृत्व प्रभास करता है। वसिष्ठ क्रोधित होकर उन्हें पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप देते हैं। वही प्रभास आगे चलकर भीष्म के रूप में जन्म लेता है—अत्यंत शक्तिशाली, पर जीवन भर बंधन में जकड़ा हुआ। अधिकांश पाठक यहीं रुक जाते हैं। वे नैतिकता पर चर्चा करते हैं, दंड पर बहस करते हैं, यह तर्क देते हैं कि ऋषि को शाप देना चाहिए था या नहीं। प्रेमयोगी इससे आगे गए, क्योंकि इस कथा में उन्हें कुछ ऐसा दिखा जो असहज रूप से उनके अपने जीवन के बहुत निकट था।

उन्होंने एक सरल प्रश्न उठाया—देवता गाय क्यों चुराएँगे?
देवताओं को न दूध चाहिए, न गोबर, न धन। फिर वे क्या चुरा रहे थे?

उत्तर तब आया, जब प्रेमयोगी ने इस कथा को इतिहास नहीं, मनोविज्ञान के रूप में पढ़ा। वसिष्ठ कोई जंगल में बैठे व्यक्ति मात्र नहीं थे। वसिष्ठ एक अवस्था थे। उनका नाम ही "स्थिर रूप से प्रतिष्ठित" होने का संकेत देता है। कहाँ प्रतिष्ठित? आत्मा में, केंद्र में, अंतर्मुखता में। वे उस मनुष्य का प्रतीक थे जिसकी इंद्रियाँ भटकती नहीं थीं, जिसकी ऊर्जा संचित थी, जिसकी जागरूकता स्थिर थी। उनकी गाय कोई पशु नहीं थी; वह उनकी इंद्रियाँ थीं, उनका प्राण था, उनकी आंतरिक संपदा थी। इसलिए वह गाय दिव्य थी—क्योंकि वह उस व्यक्ति की थी जिसने अंतर्मुखता में अधिकार प्राप्त कर लिया था।

फिर वसु आते हैं।
वसु खलनायक नहीं थे। वे प्रकृति की शक्तियाँ थे—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्रमा। वही शक्तियाँ जो हर क्षण हर मानव शरीर में कार्य कर रही हैं। प्रकाश आँखों को खींचता है, ध्वनि कानों को, स्वाद जीभ को, स्पर्श त्वचा को, ऊष्मा पाचन को, श्वास गति को, भावना हृदय को। ये शक्तियाँ निर्दोष हैं, पर अत्यंत शक्तिशाली हैं। इनका स्वभाव बाहर की ओर खींचना है। इनका कार्य विस्तार है, अंतर्मुखता नहीं। जब ये सक्रिय होती हैं, तो इंद्रियाँ चल पड़ती हैं। और जब इंद्रियाँ चलती हैं, तो जागरूकता बिखर जाती है।

यही वह क्षण है, जहाँ प्रकृति गाय को चुरा लेती है।
बल से नहीं, क्रूरता से नहीं, पाप से नहीं—आकर्षण से।
गाय को घसीटा नहीं जाता; वह घास के पीछे स्वयं चल पड़ती है।
इंद्रियों का अपहरण नहीं होता; वे सुख के पीछे दौड़ती हैं।

इसीलिए यह कथा गलत समझी जाए तो खतरनाक हो जाती है। यह दिखाती है कि अंतर्मुखता की हानि बुराई से नहीं होती, बल्कि सौंदर्य से होती है।

प्रेमयोगी ने अपना ही जीवन उसमें पढ़ लिया। कितनी बार उनकी इंद्रियाँ दुःख से नहीं, मिठास से चुराई गई थीं। कितनी बार अवसर, इच्छा, जिज्ञासा, प्रेम और महत्वाकांक्षा ने जागरूकता को बाहर खींच लिया था। और हर बार गाय घर से थोड़ी और दूर चली गई थी।

जब गाय चोरी हुई, तो वसिष्ठ ने वसुओं को शाप दिया। पर वह शाप क्रोध नहीं था। वह परिणाम था। वह नियम था। जब प्रकृति की शक्तियाँ इंद्रियों पर अधिकार कर लेती हैं, तो उन्हें बंधन में प्रवेश करना पड़ता है। वही बंधन देहधारण कहलाता है। वही जन्म कहलाता है। वही सीमा कहलाती है। वसुओं को दंड नहीं मिला; उन्हें वही अनुभव करना पड़ा जो उन्होंने उत्पन्न किया था। उन्होंने इंद्रियों को बाहर खींचा था, इसलिए उन्हें उन्हीं इंद्रियों के भीतर रहना पड़ा। उन्होंने जागरूकता को बिखेरा था, इसलिए उन्हें विभाजन का अनुभव करना पड़ा।

यहीं इस रूपक की सबसे गहरी परत खुलती है। जब बाहरी शक्तियाँ शासन करने लगती हैं, तो जागरूकता अपनी स्वतंत्रता खो देती है। ऊर्जा बनी रहती है, पर चयन शक्ति समाप्त हो जाती है। सामर्थ्य बना रहता है, पर शांति नहीं रहती। और यही भीष्म का स्वरूप है।

भीष्म महाभारत के सबसे शक्तिशाली पुरुषों में से एक हैं, फिर भी वे स्वतंत्र नहीं हैं। वे धर्म जानते हैं, पर उसका पालन नहीं कर सकते। वे अन्याय देखते हैं, पर रोक नहीं सकते। वे दीर्घायु हैं, पर उनका जीवन दीर्घ पीड़ा है। वे ऐसी शक्ति हैं जिसमें अंतर्मुख स्वामित्व नहीं है। वे ऐसा प्राण हैं जो आत्मा से कट गया है। वे वही स्थिति हैं, जो तब उत्पन्न होती है जब इंद्रियाँ शक्तिशाली हों, पर संरक्षित न हों।

प्रेमयोगी ने आधुनिक जीवन में भीष्म को हर जगह देखा। बुद्धिमान लोग आदतों में बंधे हुए। शक्तिशाली लोग इच्छाओं के गुलाम। प्रतिभाशाली लोग बाध्यताओं में जकड़े हुए। समाज शक्ति से भरा, पर शांति से रिक्त। वही भीष्म का शाप, नए-नए रूपों में दोहराता हुआ।

गाय खो गई, और मनुष्य गिर गया।

इसीलिए प्राचीन कथाएँ नैतिक कहानियाँ नहीं हैं; वे मानचित्र हैं। वे दिखाती हैं कि अंतर्मुखता खोने पर क्या होता है। जब इंद्रियाँ बहुत दूर भटक जाती हैं, तो वे आत्मा की नहीं रहतीं; वे प्रकृति की हो जाती हैं। और प्रकृति न दयालु है, न क्रूर—वह उदासीन है। वह उसी का उपयोग करती है, जिसे वह आकर्षित करती है।

योग की भाषा में इसे बंधन कहा जाता है। इसलिए नहीं कि कोई बाँधता है, बल्कि इसलिए कि केंद्र भुला दिया जाता है। जिस क्षण जागरूकता केंद्र से हटती है, उसी क्षण बंधन शुरू हो जाता है। जिस क्षण गाय घर से निकलती है, उसी क्षण खतरा आरंभ हो जाता है। रात अभी आई न हो, पर वह आ रही होती है।

प्रेमयोगी को याद आया कि उन्होंने अपने भीतर इस चोरी को कैसे महसूस किया था। वे युवा थे, महत्वाकांक्षी थे, जीवन से भरे हुए थे। संसार विशाल, रंगीन और आकर्षक था। उनकी इंद्रियाँ उत्साहित बछड़ों की तरह बाहर दौड़ रही थीं। उन्हें जीवंतता महसूस होती थी, पर साथ ही एक बेचैनी भी थी। कुछ कमी थी, पर उसका नाम नहीं पता था। बहुत बाद में उन्हें समझ आया कि कमी सुख की नहीं थी, कमी स्वामित्व की थी। जीवन जिया जा रहा था, पर केंद्र से नहीं।

यही वसिष्ठ की हानि का अर्थ है—पशु की हानि नहीं, धुरी की हानि। जब धुरी खो जाती है, तो सब कुछ चलता रहता है, पर कुछ भी स्थिर नहीं रहता। जीवन चलता रहता है, पर दिशा नहीं रहती—केवल प्रतिक्रिया रह जाती है।

इस दृष्टि से शाप दंड नहीं, शिक्षा था। वह चेतना में निहित नियम था—जब अंतर्मुखता खोती है, तो दुःख आरंभ होता है। जब जागरूकता बिखरती है, तो बंधन जन्म लेता है। जब गाय चोरी होती है, तो मनुष्य गिरता है।

इसी कारण यह कथा हजारों वर्षों से जीवित है। इसलिए नहीं कि लोग नाटकीयता पसंद करते थे, बल्कि इसलिए कि वे स्वयं को इसमें पहचानते थे। हर मानव जीवन इस कथा की पुनरावृत्ति है। हर दिन गाय बाहर जाती है। हर दिन प्रकृति उसे चुराने का प्रयास करती है। हर दिन जागरूकता या तो रक्षा करती है या भूल जाती है। और हर दिन यह तय होता है कि हम वसिष्ठ बने रहेंगे या भीष्म बनेंगे।

इस प्रतीक की विलक्षणता यह है कि यह न प्रकृति को दोष देता है, न इंद्रियों को राक्षस बनाता है। यह केवल प्रक्रिया को उजागर करता है। इंद्रियों का बाहर जाना स्वाभाविक है, पर जागरूकता का उनके साथ जाना आवश्यक है। जब जागरूकता पीछे रह जाती है, तब चोरी होती है। जब जागरूकता इंद्रियों के साथ चलती है, तब चराई पोषण बनती है, हानि नहीं।

मनोवैज्ञानिक अर्थ यहीं तक नहीं रुकता। योगिक अर्थ और गहरा है।
योग में कहा गया है कि प्राण ध्यान का अनुसरण करता है। जहाँ ध्यान जाता है, ऊर्जा वहीं जाती है। जब ध्यान बाहर होता है, ऊर्जा बाहर होती है। जब ऊर्जा बाहर होती है, तो आंतरिक मौन सूखने लगता है। और जब आंतरिक मौन सूखता है, तो आत्मा दूर प्रतीत होने लगती है। यही अंतर्मुखता की चोरी है। यह अचानक नहीं होती। यह धीरे-धीरे होती है। यह लगभग अनदेखी रहती है। और यह सार्वभौमिक है।

प्रेमयोगी को समझ आया कि यही गो-रक्षा का वास्तविक अर्थ है। गाय की रक्षा का अर्थ है ध्यान की रक्षा। इंद्रियों की रक्षा का अर्थ है प्राण की रक्षा। गाय को वापस लाने का अर्थ है जागरूकता को केंद्र में लौटाना। बाकी सब गौण है।

जब यह दृष्टि स्पष्ट हो जाती है, तो कथा पूरी तरह बदल जाती है। वसिष्ठ क्रोधित ऋषि नहीं रह जाते; वे स्वयं जागरूकता बन जाते हैं। वसु शरारती देवता नहीं रहते; वे प्रकृति का आकर्षण बन जाते हैं। गाय पशु नहीं रहती; वह आंतरिक संपदा बन जाती है। और शाप क्रूर नहीं रहता; वह अपरिहार्य बन जाता है।

मानव पतन स्वर्ग से पृथ्वी पर नहीं होता। वह केंद्र से परिधि की ओर होता है। और वापसी ऊपर नहीं, भीतर होती है।

जब प्रेमयोगी ने यह समझ लिया, तो यह कथा प्राचीन नहीं रही। यह तत्काल बन गई। उन्होंने देखा कि गाय हर क्षण चोरी हो रही है—हर फोन में, हर स्क्रीन में, हर इच्छा में, हर विकर्षण में। और उन्होंने देखा कि वास्तविक रक्षा केवल जागरूकता है। न पूजा, न क्रोध, न तर्क—केवल जागरूकता।

इसीलिए यह अध्याय महत्वपूर्ण है। क्योंकि जब आप यह देख लेते हैं कि गाय कैसे चुराई जाती है, तो आप यह भी देख लेते हैं कि उसे कैसे बचाया जा सकता है। और तब प्राचीन कथा आपकी अपनी कथा बन जाती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गाय एक सात्त्विक पशु है, संभवतः अधिकांश पशुओं से अधिक, और इसी कारण उसे इंद्रियों के प्रतीक के रूप में चुना गया। पर इसका अर्थ यह नहीं कि गाय इतनी विशेष है कि उसके रूपक अर्थ को भुला दिया जाए और केवल पशु को ही सब कुछ मान लिया जाए। प्रेमयोगी ने यह अपने जीवन से स्पष्ट रूप में समझा। एक क्षेत्रीय पशु चिकित्सक के रूप में उन्होंने अनेक पशुओं की सेवा की—गाँवों के निजी बाड़ों में बँधी हुई एक से पाँच पशु इकाइयों में, जिनमें कुछ भैंसें, भेड़ें और बकरियाँ भी होती थीं, पर अधिकांश गायें थीं। वे विभिन्न नस्लों की थीं, पर अधिकतर जर्सी थीं। उन्होंने एक विचित्र तथ्य देखा—ये गायें संभालने में अत्यंत कोमल थीं। कोई भी उन्हें गले लगा सकता था, उनके थनों को छू सकता था, बिना किसी प्रतिरोध के दुह सकता था। अधिकांश के सींग काटे हुए थे, वे शांत थीं और स्थानीय पहाड़ी छोटी गायों की तुलना में कहीं अधिक प्रबंधनीय थीं। उनका गोबर भी कभी घृणा उत्पन्न नहीं करता था, यहाँ तक

कि सीधे हाथ से संभालने पर भी उसमें दुर्गंध नहीं होती थी। यह विशेषतः उन पालतू गायों में सत्य था, जिन्हें अच्छी गुणवत्ता की घास दी जाती थी और जिनमें दाने का उपयोग बहुत कम या बिल्कुल नहीं होता था। इसके विपरीत, जो गायें स्वतंत्र रूप से इधर-उधर घूमकर जो मिला खा लेती थीं, उनका गोबर प्रायः दुर्गंधयुक्त, विकर्षक और रोगजनक प्रतीत होता था।

जब प्रेमयोगी ने इन अनुभवों पर अपने शरीर-विज्ञान दर्शन—देह और जागरूकता के विज्ञान—को लागू किया, तो परिणाम अत्यंत प्रभावशाली थे। यद्यपि यह विधि किसी भी शरीर पर लागू की जा सकती है, पर गायों पर इसे लागू करना विशेष रूप से आकर्षक, शीतल, मन को स्पष्ट करने वाला और गहराई से प्रभावी था। स्वयं सेवा का कार्य कर्मयोग बन गया, जिसने उन्हें भीतर से शुद्ध किया। इसी शुद्धि से सहज रूप से बैठने का योग उत्पन्न हुआ, फिर गहन तांत्रिक अभ्यास, कुंडलिनी जागरण और अंततः आत्म-साक्षात्कार। इस अनुभव ने उन्हें दिखा दिया कि गाय को प्रतीक क्यों चुना गया—इसलिए नहीं कि वही एकमात्र पवित्र पशु है, बल्कि इसलिए कि उसका सात्त्विक स्वभाव इस रूपक को दृश्य, कोमल और सीखने में सहज बना देता है। सभ्यता की भूल गाय का सम्मान करना नहीं थी, भूल वहाँ रुक जाना थी—यह भूल जाना कि वास्तविक गाय, जिसकी रक्षा होनी थी, सदा भीतर ही थी।

अध्याय 4 – गोपाल कृष्ण: इंद्रियों के स्वामी

प्रेमयोगी अकसर यह सोचते थे कि भारत में ईश्वर को सबसे पहले राजा, विधिवेत्ता या मंदिर में बैठा हुआ क्यों नहीं दिखाया गया। सबसे प्राचीन और प्रिय रूपों में ईश्वर नंगे पाँव धूल में खड़ा है, हाथ में बांसुरी लिए हुए, और उसके चारों ओर न पुजारी हैं न शासक, बल्कि गायें हैं। यह दृश्य इतना सामान्य हो गया कि लोगों ने उस पर प्रश्न करना ही छोड़ दिया। उसे ग्राम्य काव्य, ग्रामीण स्मृति या देहाती रोमांस मान लिया गया। पर प्राचीन प्रतीक कभी सजावटी नहीं होते। वे कार्यात्मक होते हैं। वे वह सिखाने के लिए होते हैं, जिसे शब्द सीधे नहीं कह सकते।

यदि ईश्वर शक्ति दिखाना चाहता, तो वह महल में जन्म लेकर तुरंत सिंहासन पर बैठ सकता था। यदि शुद्धता दिखानी होती, तो उसे ध्यान में लीन दिखाया जा सकता था। यदि ज्ञान दिखाना होता, तो उसे शास्त्रों के साथ दर्शाया जा सकता था। फिर भी कृष्ण को सबसे पहले गोपाल के रूप में दिखाया गया—न गायों की पूजा करने वाला, न राजनीतिक अर्थों में उनकी रक्षा करने वाला, बल्कि उनका संरक्षक। प्रेमयोगी को समझ आया कि इसी एक विवरण में आध्यात्मिक जीवन का पूरा विज्ञान छिपा है।

राज्य चलाने से पहले कृष्ण ने गायों को सँभाला। गीता का उपदेश देने से पहले उन्होंने चराई को समझा। पर्वत उठाने से पहले उन्होंने भटकती इंद्रियों के पीछे चलना सीखा। यह क्रम संयोग नहीं था; यह निर्देश था। इसका स्पष्ट अर्थ था—जो व्यक्ति पहले अपनी इंद्रियों पर अधिकार नहीं करता, वह संसार पर शासन नहीं कर सकता।

कथाओं में गोपाल जीवन कोई पेशा नहीं है; वह चेतना की अवस्था है। गोपाल न गायों को घसीटता है, न उनसे लड़ता है, न उन्हें बाँधता है। वह उनके साथ चलता है, उन्हें देखता है, उन्हें चरने देता है, पर बहुत दूर नहीं जाने देता। वह जानता है कौन-सा खेत सुरक्षित है, कौन-सा खतरनाक, कब रुकना है, कब पुकारना है, कब प्रतीक्षा करनी है। जागरूकता को इंद्रियों के साथ ठीक इसी तरह व्यवहार करना चाहिए। कृष्ण का राज्य केवल मथुरा और द्वारका पर शासन नहीं था; वह मुक्त आत्मा के अनंत क्षेत्र पर अधिकार का प्रतीक भी था।

प्रेमयोगी ने यह चित्र अपने जीवन में तब सजीव होते देखा, जब उन्होंने इंद्रियों से लड़ना छोड़ दिया और उनके साथ चलना शुरू किया। पहले, अनेक साधकों की तरह, उन्होंने दमन का प्रयास किया था, बल का प्रयोग किया था, नकार का सहारा लिया था। पर इंद्रियाँ शत्रु नहीं होतीं; वे ऊर्जा होती हैं। दबाने पर वे विद्रोह करती हैं, छोड़ देने पर चुरा ली जाती हैं। केवल तब, जब जागरूकता ग्वाले की तरह उनके पीछे चलती है, वे उपयोगी बनती हैं। कृष्ण भक्ति नहीं सिखा रहे थे; वे स्वामित्व सिखा रहे थे।

गोपियाँ इस कथा का सबसे अधिक गलत समझा गया पक्ष हैं। उन्हें प्रायः केवल स्त्रियों के रूप में और रास-लीला को भोग के रूप में देखा जाता है। पर प्रेमयोगी ने स्पष्ट देखा कि गोपियाँ स्त्रियाँ नहीं थीं; वे इंद्रियाँ थीं। प्रत्येक गोपी ध्यान की एक धारा थी, गति की एक दिशा थी, एक इच्छा, एक आकर्षण थी। जब कृष्ण ने पुकारा, तो सारी इंद्रियाँ उनकी ओर मुड़ गईं। यही उसका अर्थ है। जो इंद्रियाँ सामान्यतः बाहर की ओर दौड़ती हैं, वे अचानक भीतर की ओर मुड़ गईं। न संघर्ष हुआ, न प्रतिरोध—केवल सामंजस्य के प्रति उत्तर।

रास-लीला भोग नहीं, समन्वय है। वह वह नृत्य है, जो तब घटित होता है जब सभी इंद्रियाँ जागरूकता के साथ लय में चलने लगती हैं। कोई इंद्रिय न अस्वीकार की जाती है, न दबाई जाती है। सबको सम्मिलित किया जाता है, पर सब संरेखित रहती हैं। इसलिए नृत्य वृत्ताकार है, अव्यवस्थित नहीं। इसलिए कृष्ण केंद्र में हैं, किनारे पर नहीं। जागरूकता केंद्र है, इंद्रियाँ उसके चारों ओर घूमती हैं। यही सर्वोच्च योग है, और इसे गुफा में नहीं, खुले मैदान में दिखाया गया है।

शास्त्रीय कथाएँ सदैव बहुस्तरीय होती हैं। जब किसी कथा में गूढ़ या रूपक सत्य होता है, तो उसका बाहरी स्तर भी अर्थपूर्ण होता है; अन्यथा उसी कथा को चुनने का कोई कारण न होता। बाहरी कथा आंतरिक शिक्षा को सहारा देती है, जैसे शरीर आत्मा को सहारा देता है। रास का तांत्रिक अर्थ भी है, और प्रेमयोगी ने इसे अपने जीवन से समझा। किशोरावस्था में उनके प्रति अनेक युवतियाँ आकर्षित हुईं, पर ध्यान का केंद्र केवल एक ही छवि बनी—जैसे कृष्ण के लिए राधा। अन्य आकर्षण केवल तीव्रता बढ़ाने वाले थे, केंद्र नहीं। उसी एक आंतरिक छवि से कुंडलिनी जागरण हुआ और स्वप्न अवस्था में आत्म-साक्षात्कार घटित हुआ। इससे उन्हें समझ आया कि बाहरी और आंतरिक अर्थ विरोधी नहीं हैं, बल्कि समन्वित हैं। समस्या तब पैदा होती है, जब गूढ़ सत्य भूल जाता है और लोग केवल सतह पर बहस करते हैं।

बांसुरी सबसे सूक्ष्म प्रतीक है। बांसुरी का अपना कोई स्वर नहीं होता; वह भीतर से खाली होती है। जब उसमें से श्वास गुजरती है, तो संगीत उत्पन्न होता है। कृष्ण ज़ोर से फूँकते नहीं; वे श्वास लेते हैं। शून्यता से होकर प्राण बहता है और सामंजस्य जन्म लेता है। प्रेमयोगी ने इसे अपने अभ्यास में तब समझा, जब उन्होंने श्वास पर बल देना छोड़ दिया और उसे सहज बहने दिया। जैसे ही प्रयास गिरा, लय प्रकट हुई। जैसे ही लय आई, इंद्रियाँ शांत हुईं और निर्विकल्प ध्यान घटित हुआ—बांसुरी के मधुर संगीत की तरह आनंदमय। बांसुरी कोई वाद्य नहीं; वह सुषुम्ना मार्ग है, वह केंद्रीय पथ है, जिससे अहंकार के खोखला होने पर जीवन-शक्ति बहती है।

बांसुरी से निकलने वाला स्वर इस पर निर्भर करता है कि श्वास कैसे दी जा रही है और सात छिद्रों में से कौन-से खुले हैं। इसी तरह मनुष्य की गतिविधि और चिंतन इस पर निर्भर करता है कि श्वास कैसी है और सात चक्रों में से कौन-से सक्रिय हैं।

वृंदावन कोई भौगोलिक स्थान नहीं है; वह एक आंतरिक क्षेत्र है। वह वह अवस्था है, जहाँ इंद्रियाँ जागरूकता के अधीन चरती हैं। वहाँ जीवन सरल, प्रत्यक्ष, खेलपूर्ण और फिर भी गहरे अनुशासन वाला होता है। प्रारंभिक वृंदावन में न मंदिर हैं, न नियम—केवल जीवन है। इसलिए कृष्ण वहीं बड़े होते हैं। बाद में वे राजनीति, युद्ध और कर्तव्य में प्रवेश करते हैं। यह क्रम अनिवार्य है—भीतर का स्वामित्व बाहर की क्रिया से पहले आता है।

प्रेमयोगी ने देखा कि जब भी लोग भीतर का क्रम स्थापित किए बिना सीधे कर्म में कूदते हैं, तो अराजकता जन्म लेती है। पर जब भीतर व्यवस्था होती है, तो जटिल कर्म भी सहज हो जाते हैं। कृष्ण का जीवन यही दिखाता है। वे पहले उपदेश नहीं देते; पहले खेलते हैं। पहले आदेश नहीं देते; पहले सुनते हैं। पहले विजय नहीं चाहते; पहले चरवाहे बनते हैं। केवल गोपाल ही आत्माओं का सारथी बन सकता है।

आधुनिक मनुष्य पहचान के पीछे दौड़ता है—राजनीति में, नौकरी में, परिवार में, समाज में। वह पहचान पाने पर ध्यान देता है, योग्य बनने पर नहीं। भीतर की गायें असंरक्षित चरती रहती हैं और बाहर परिश्रम अंधा हो जाता है। परिणाम होता है—जागरूकता के बिना सफलता, आत्म-बोध के बिना उपलब्धि। सही क्रम उलटा है। पहले इंद्रियों को जागरूकता के अधीन चरने दो, जब तक वे तृप्त होकर स्वयं लौट न आएँ। एक बार आत्म-साक्षात्कार का मधुर रस भीतर चख लिया जाए, तो इंद्रियाँ स्वाभाविक रूप से अनुशासित हो जाती हैं। फिर भी ग्वाले की दृष्टि उन पर बनी रहनी चाहिए, क्योंकि संसार के हरे-भरे खेत कभी पूरी तरह भरोसेमंद नहीं होते।

प्रेमयोगी को अपने सेवा-काल के वर्ष याद आते हैं, जब उनके अनेक सहकर्मी अधिकारियों के सामने अंक बढ़ाने में लगे रहते थे, जबकि वे शांत मन से, ईमानदारी और अपने विकसित शरीर-विज्ञान दर्शन की जागरूकता के साथ क्षेत्र में काम करते थे। उन्हें "मैं, मैं" कहना अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि वह अहंकार को पोषित करता था। पशु-चिकित्सा, निर्माण, जल-टंकी, कृषि, वर्मीकम्पोस्ट, पॉलीहाउस या कोई भी कार्य

—सब एक समान दृष्टि से किए जाते थे, क्योंकि अद्वैत में सभी कर्म एक हैं। भय, संकोच और इच्छाएँ उसी जागरूकता में कोमल हो गईं और वे एक स्थिर ताओ की तरह हो गए। उनका कार्य लोगों को साधारण लगा, क्योंकि उसमें आत्म-प्रचार नहीं था। वास्तव में वह कार्य गहरे वैज्ञानिक और शांत रूप से तीव्र था। जागरूकता को लोग पिछड़ापन समझ बैठे। पर महान खोजें सदा स्थिर ध्यान से ही जन्म लेती हैं। प्रमाण पत्रों में नहीं, बल्कि जागरण, आत्म-साक्षात्कार और समाधि में उनका प्रमाण था।

आधुनिक पाठकों की सबसे बड़ी भूल यह है कि वे गोपाल जीवन को सरल जीवन समझते हैं। वास्तव में वह सबसे जटिल योग है। राज्य चलाना इंद्रियों को सँभालने से आसान है। राज्य नियम से चलता है; इंद्रियाँ आकर्षण से। राज्य को बल से चलाया जा सकता है; इंद्रियों को नहीं। उनके साथ केवल प्रेम, लय और जागरूकता काम करती है। कृष्ण ने कभी गायों पर बल नहीं किया। उन्होंने केवल उपस्थिति दी।

मंदिर बाद में आए। मंदिर उनके लिए हैं, जिन्होंने आंतरिक क्षेत्र खो दिया है। गोपाल जीवन उनके लिए है, जिनके भीतर वह अभी जीवित है। जब भीतर का क्षेत्र जीवित होता है, तो ईश्वर सर्वत्र होता है। जब वह खो जाता है, तो ईश्वर को पत्थर में बनाना पड़ता है। यह आलोचना नहीं, निदान है।

फिर भी मंदिरों का मूल्य कम नहीं है। वे अंतर्मुखता की स्मृति-स्थल हैं। वहाँ कुछ क्षणों के लिए ही सही, लोग शांति, विरक्ति और आनंद का स्पर्श पाते हैं। यह छोटी मात्रा समाज को जीवित रखती है और ऊँचे आंदोलनों की प्रेरणा बनी रहती है।

कृष्ण को गायों के साथ दिखाने का उद्देश्य पशु-प्रेम सिखाना नहीं, इंद्रिय-अनुशासन सिखाना है। बांसुरी संगीत नहीं, प्राण-प्रवाह सिखाती है। रास-लीला रोमांस नहीं, सामंजस्य सिखाती है। हर विवरण मनोवैज्ञानिक है, योगिक है। कुछ भी सजावट नहीं।

प्रेमयोगी ने इसे अपने जीवन में जिया। आधुनिक कंप्यूटरों पर काम, खेतों में श्रम, वर्मीकम्पोस्ट, फल-बाग, पशु-सेवा, सामाजिक कार्य—सब एक साथ, अद्वैत जागरूकता में। जैसे सभी इंद्रियों को बाहर स्वतंत्र रूप से चलने देना, पर उन्हें सतर्क दृष्टि में रखना। जैसे कृष्ण केंद्र में खड़े हों और गोपियाँ परिधि में नृत्य कर रही हों। यदि कभी ध्यान टूटा, तो उसे प्रेम से वापस बुलाया गया।

जिस दिन प्रेमयोगी ने इंद्रियों के पीछे दौड़ना छोड़ा और उनके साथ चलना शुरू किया, उसी दिन उनका जीवन बदल गया। कार्य शांत हो गया, संबंध स्पष्ट हो गए, इच्छा की आक्रामकता चली गई। वही वृंदावन भीतर उतर आया—स्थान के रूप में नहीं, प्रक्रिया के रूप में।

इसीलिए गोपाल सर्वोच्च योगी है। वह न इंद्रियों का त्याग करता है, न उनमें डूबता है। वह उन्हें समझता है, उनकी प्रकृति का सम्मान करता है और उनकी गति का मार्गदर्शन करता है। वह जानता है कि गायों को चरना है, पर लौटना भी है। यही संतुलन है।

जब यह समझ आती है, तो गोपाल ग्रामीण स्मृति नहीं रहता। वह मानवता का सबसे उन्नत मनोवैज्ञानिक प्रतीक बन जाता है। इतना सरल कि बालक जैसा लगे, और इतना गहरा कि जीवन भर समझ में आता रहे। त्रासदी यह है कि लोग मूर्ति पूजते हैं, पर निर्देश भूल जाते हैं। जैसे ही निर्देश स्मरण में आता है, कृष्ण पत्थर से उतरकर फिर से मानव मन की भटकती गायों के पीछे चलने लगते हैं।

और तब भ्रम का नाचता सर्प विश्राम करता है। इंद्रियाँ चलती हैं, पर सामंजस्य में। गाय चरती है, पर खोती नहीं। और मनुष्य, पहली बार, घर लौट आता है।

अध्याय 5 – इंद्र की गाय: अहंकार बनाम आंतरिक संपदा

प्रेमयोगी ने एक बार यह बात गहराई से समझी कि सबसे खतरनाक चोरी शत्रुओं द्वारा नहीं, बल्कि शासकों द्वारा की जाती है। शत्रु चुपचाप चोरी करता है, जबकि शासक खुलेआम—तर्क, गर्व और भीड़ के समर्थन के साथ। यही समझ उनके भीतर तब जीवंत हुई, जब उन्होंने इंद्र द्वारा गायें चुराने की प्राचीन कथा पढ़ी। यह कथा उन्हें आरंभ में विचलित करती थी। देवताओं का राजा, स्वर्ग का शासक, वर्षा देने वाला इंद्र—वह गायें क्यों चुराएगा? ऐसे वैभवशाली अस्तित्व के भीतर किस प्रकार की कमी हो सकती है? कैसी भूख इतनी प्रचुरता के भीतर छिपी हो सकती है?

शास्त्रों की भाँति, उत्तर बाहर नहीं था—वह भीतर था।

इंद्र आकाश में बैठा कोई व्यक्ति नहीं है। इंद्र हर मनुष्य के भीतर का अहं-तत्त्व है। वह "मैं शासन करता हूँ", "मैं जानता हूँ", "मैं योग्य हूँ", "मैंने यह उपलब्धि पाई है"—इस भावना का प्रतिनिधि है। वह अस्तित्व के लिए आवश्यक है, जैसे व्यवस्था के लिए राजा आवश्यक होता है। पर जिस क्षण वह यह भूल जाता है कि वह आंतरिक राज्य का सेवक है और स्वयं को स्वामी मानने लगता है, उसी क्षण वह चोर बन जाता है। और अहंकार सबसे पहले जो चुराता है, वह इंद्रियाँ होती हैं।

जब इंद्र गायें चुराता है, तो उसका अर्थ है—अहंकार ध्यान चुरा लेता है।

प्रेमयोगी ने अपने जीवन में यह बार-बार घटित होते देखा। जैसे ही उनके भीतर यह भाव आया—"मैं अच्छा कर रहा हूँ", "मैं आगे हूँ", "मैं दूसरों से अलग हूँ"—उसी क्षण इंद्रियाँ जागरूकता से फिसलने लगती थीं। काम जल्दबाज़ी में होने लगता था। श्वास उथली हो जाती थी। सुनना कम हो जाता था। देखना चयनात्मक हो जाता था। वे अब भी काम कर रहे होते थे, आगे बढ़ रहे होते थे, सफल भी हो रहे होते थे—पर कुछ खो चुका होता था। गायें इंद्र के महल में बंद हो चुकी होती थीं। अब इंद्रियाँ जागरूकता की नहीं, अहंकार की सेवा कर रही होती थीं।

यह पतन सबसे सूक्ष्म होता है। न कोई पाप, न कोई नाटक, न कोई स्पष्ट भूल। केवल सूखापन। केवल बेचैनी। केवल सफलता के भीतर भी एक अजीब-सी भारीपन की अनुभूति।

शास्त्रों में जब इंद्र गायें चुराता है, तो अंधकार फैल जाता है। वर्षा रुक जाती है। धरती सूख जाती है। फसलें नष्ट हो जाती हैं। ये कृषि घटनाएँ नहीं हैं; ये आंतरिक घटनाएँ हैं। जब इंद्रियाँ अहंकार द्वारा चुरा ली जाती हैं, तो प्राण का मुक्त प्रवाह रुक जाता है। श्वास सिकुड़ जाती है। ऊर्जा ठहर जाती है। सृजनशीलता सूख जाती है। आनंद लुप्त हो जाता है। यहाँ तक कि ध्यान भी यांत्रिक हो जाता है। यही अहंकार-जनित चोरी के बाद आने वाला अकाल है।

इन कथाओं में गायों को प्रायः गुफाओं में बंद दिखाया जाता है। गुफा एक बंद तंत्र है। वह अहंकार के उस बंद आंतरिक क्षेत्र का प्रतीक है, जहाँ सब कुछ नियंत्रित, गिना-तौला और स्वामित्व में होता है। जब इंद्रियाँ अहंकार की गुफा में बंद हो जाती हैं, तो वे जागरूकता के खुले मैदान में स्वतंत्र रूप से नहीं चर पातीं। वे महत्वाकांक्षा, वासना, भय और छवि के औज़ार बन जाती हैं। इसी कारण अहंकार सदा भूखा रहता है। वह जो चुराता है, उसे पचा नहीं पाता।

प्रेमयोगी ने आधुनिक जीवन में यह दृश्य हर जगह देखा। लोग पहले से अधिक उपलब्धियाँ पा रहे थे, फिर भी कम जीवंत महसूस कर रहे थे। उनकी इंद्रियाँ अत्यधिक काम कर रही थीं, पर पोषित नहीं हो रही थीं।

आँखें बहुत कुछ देख रही थीं, पर समझ बहुत कम थी। कान अंतहीन सुन रहे थे, पर सुनना नहीं था। मन सूचनाएँ इकट्ठा कर रहा था, पर विवेक खो रहा था। गायें गुफा में थीं, जागरूकता के खुले क्षेत्र में नहीं।

फिर कथा का सबसे सुंदर भाग आता है—गायों की मुक्ति।

पुराणों में जब गायें मुक्त होती हैं, तो प्रकाश फैल जाता है। प्रभात लौट आता है। वर्षा होती है। नदियाँ बहने लगती हैं। जीवन फिर से श्वास लेने लगता है। यह मिथक नहीं है। यह योग और तंत्रिका-विज्ञान का काव्यात्मक वर्णन है। जब इंद्रियाँ जागरूकता में लौट आती हैं, तो प्राण फिर से बहने लगता है। श्वास गहरी हो जाती है। ऊर्जा संचरित होने लगती है। तंत्रिका तंत्र शिथिल होता है। मन स्पष्ट हो जाता है। वही स्पष्टता अकाल के बाद वर्षा जैसी प्रतीत होती है।

वर्षा ही प्राण है।

इसी कारण इंद्र वर्षा का देवता भी है। जब अहंकार जागरूकता के साथ संरेखित होता है, तो वह चोर नहीं, माध्यम बन जाता है। तब वर्षा स्वाभाविक रूप से होती है। तब प्रयास सहज हो जाता है। तब कर्म पूजा बन जाता है। पर जब अहंकार गायों का स्वामी बनने की कोशिश करता है, तो वर्षा रुक जाती है। अहंकार प्राण उत्पन्न नहीं कर सकता; वह केवल उसे रोक सकता है।

प्रेमयोगी ने अपने जीवन में इस चक्र को अनेक बार अनुभव किया। जब भी वे विनम्रता के साथ कार्य करते थे, जागरूकता बहती थी। कार्य सरलता से हो जाते थे। समाधान अपने-आप प्रकट होते थे। लोग बिना दबाव के सहयोग करते थे। पर जैसे ही अहंकार प्रवेश करता था—चाहे बहुत सूक्ष्म रूप में—सब कुछ धीमा हो जाता था। विलंब आने लगता था। प्रतिरोध बढ़ जाता था। थकान बढ़ जाती थी। मानो आकाश ही बंद हो गया हो। बाद में उन्हें समझ आया—गायें फिर से चुरा ली गई थीं।

इसीलिए शास्त्रों में देवता भी गायें खोते हैं। क्योंकि देवता कोई बाहरी प्राणी नहीं, बल्कि क्रियात्मक तत्त्व हैं। इंद्र अहंकार है। अग्नि पाचन और इच्छा है। वायु गति है। सूर्य दृष्टि है। सोम मन है। ये सभी तत्त्व गिर सकते हैं, क्योंकि यदि इन्हें बिना निगरानी छोड़ा जाए, तो ये जागरूकता पर अधिकार कर लेते हैं। शास्त्र देवताओं की अंधी पूजा नहीं करते; वे उनसे सावधान करते हैं।

इसी कारण इंद्र को अक्सर भयभीत, असुरक्षित, ईर्ष्यालु और चिंतित दिखाया गया है। अहंकार सदा नियंत्रण खोने से डरता है। वह गायों की वापसी से डरता है, क्योंकि गायों की वापसी का अर्थ है—जागरूकता की वापसी। और जागरूकता झूठे स्वामित्व को घोल देती है। जब गायें घर लौटती हैं, तो राजा फिर से सेवक बन जाता है।

प्रेमयोगी ने यह अपने पेशेवर जीवन में स्पष्ट देखा। जब वे केवल अंक, पहचान या प्रशंसा के लिए काम करते थे, तो अहंकार शासन करता था। काम भारी लगता था। सफलता भी खोखली लगती थी। पर जब वे बिना आत्म-संदर्भ के, मौन रूप से काम करते थे, तो जागरूकता शासन करती थी। काम हल्का लगता था, चाहे वह शारीरिक रूप से कितना ही कठिन क्यों न हो। वही गायों की वापसी थी। वही फिर से वर्षा का होना था।

मनोवैज्ञानिक व्याख्या सरल है—ध्यान ही जीवन है। जहाँ ध्यान जाता है, ऊर्जा वहीं जाती है। जहाँ ऊर्जा जाती है, वहीं विकास होता है। अहंकार ध्यान को हड़प लेता है और उसे छवि, स्थिति, नियंत्रण और तुलना की ओर मोड़ देता है। जागरूकता ध्यान को गुणवत्ता, उपस्थिति, गहराई और सत्य की ओर ले जाती है।

इसका अर्थ यह नहीं कि छवि, स्थिति या तुलना के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए। करना चाहिए—पूरी शक्ति से—पर अद्वैत जागरूकता के साथ, जो अहंकार के विष का सबसे प्रभावी प्रतिकार है।

इसीलिए इंद्र द्वारा गायें चुराने की कथा नैतिक उपदेश नहीं है। वह यांत्रिकी का वर्णन है। वह दिखाती है कि अहंकार जब ध्यान चुरा लेता है, तो आंतरिक तंत्र कैसे ढहता है, और जब जागरूकता उसे मुक्त करती है, तो वह कैसे पुनर्जीवित होता है।

आधुनिक जीवन की त्रासदी यह है कि लोग अहंकार को सफलता के रूप में पूजते हैं। वे इंद्र की चोरी का उत्सव मनाते हैं। वे महत्वाकांक्षा, गति, प्रभुत्व और दृश्यता को पुरस्कृत करते हैं। और फिर आश्चर्य करते हैं कि चिंता, थकान और रिक्तता अकाल की तरह क्यों फैल रही है। चोरी की गई भूमि पर वर्षा नहीं हो सकती।

सत्य यह है कि ऐसा कोई कर्म नहीं है, जो नहीं किया जाना चाहिए—जब तक वह मानवता की सीमा में है। वास्तविक समस्या कर्म नहीं है, समस्या है इंद्रियों पर दृष्टि न रखना। बिना देखे छोड़ी गई इंद्रियाँ आज्ञाकारी कुत्ते से भौंकने वाले कुत्ते में बदल जाती हैं। पर इंद्रियों को देखना किसी भौतिक वस्तु को देखने जैसा नहीं है, क्योंकि इंद्रियाँ अमूर्त हैं। यह देखना अप्रत्यक्ष होता है—अद्वैत जागरूकता के माध्यम से। यह जागरूकता इंद्रियों को ब्रह्मांड की अन्य सभी वस्तुओं के समान स्तर पर रखती है, जिससे वे विशेष नहीं रह जातीं। जब इंद्रियाँ विशेष नहीं मानी जातीं, तो उनका प्रभुत्व समाप्त हो जाता है। यही चरती हुई गायों के साथ भी सत्य है। उन्हें केवल अद्वैत भाव से ही देखा जा सकता है। अद्वैत ही उन्हें स्वतंत्र रूप से चरने देता है और फिर भी वश में रखता है। जब ग्वाले के लिए गायें घास, पेड़, आकाश या किसी भी अन्य वस्तु से अधिक महत्वपूर्ण नहीं होतीं, तो वे शांत रहती हैं। ग्वाला नियंत्रण के लिए नहीं देखता; वह हानि रोकने के लिए देखता है। आज्ञाकारी पशु को चुराना कठिन होता है। वह जानता है घर कहाँ है और स्वयं लौट आता है। पर जैसे ही द्वैत आता है, अशांति शुरू हो जाती है—शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर—और गायें या तो भटक जाती हैं, या विरोध में लौट आती हैं, या चुरा ली जाती हैं।

प्रेमयोगी ने यह बार-बार असफल होकर और बार-बार लौटकर सीखा। हर बार जब अहंकार हावी हुआ, जीवन सिकुड़ गया। हर बार जब जागरूकता लौटी, जीवन खुल गया। धीरे-धीरे उन्होंने अपने भीतर के इंद्र को देखना सीख लिया—न उसे मारने के लिए, न उसे लज्जित करने के लिए, बल्कि उसे उसकी जगह पर रखने के लिए। राजा, स्वामी नहीं। सेवक, चोर नहीं। यहाँ जागरूकता का अर्थ है अद्वैत या शुद्ध जागरूकता। बिना अद्वैत के कोई भी शुद्ध जागरूकता की अवस्था में प्रवेश नहीं कर सकता। केवल "जागरूकता" शब्द यदि अकेले प्रयोग हो, तो वह आत्म-जागरूकता का द्योतक है; अन्यथा वह केवल वस्तुओं की चेतना रह जाती है।

जब अहंकार हिंसक रूप से नहीं, बल्कि कोमलता से ढहता है, तो इंद्रियाँ स्वाभाविक रूप से भीतर लौट आती हैं। वे विद्रोह नहीं करतीं। वे संघर्ष नहीं करतीं। वे बस घर लौट आती हैं, भटककर थक चुकी होती हैं। वही घर लौटना आनंद है। इसलिए गायों की मुक्ति को सदैव उत्सव के रूप में दिखाया गया है। संसार फिर से प्रकाशमान हो जाता है, क्योंकि मन फिर से प्रकाशमान हो जाता है।

अहंकार इंद्रियों को बाहर की ओर धकेलता है, क्योंकि वह कभी तृप्त नहीं होता। बाहरी संसार में भटकती इंद्रियाँ ही उसकी अनंत भूख को खिलाने के साधन हैं।

यही इस कथा का छिपा हुआ संदेश है। "चोरी मत करो" नहीं, बल्कि "अहंकार को ध्यान का स्वामी मत बनने दो।" "इंद्र से लड़ो" नहीं, बल्कि "इंद्र को शिक्षित करो।" अहंकार को प्रबंधक बनाओ, स्वामी नहीं। उसे गुफा-रक्षक नहीं, ग्वाला बनाओ।

अहंकार ही इंद्रियों को उनकी प्रकृति के विरुद्ध इधर-उधर धकेलता है, उन्हें अपनी भूख के लिए निर्दयता से प्रयोग करता है। जब अहंकार अद्वैत को अपनाकर नियंत्रण छोड़ देता है और गायों को स्वाभाविक रूप से चरने देता है, तो वह स्वयं ग्वाला बन जाता है। ग्वाला अनावश्यक लाभ के लिए गायों को नहीं हाँकता; वह केवल उनकी रक्षा करता है, ताकि वे हानि न पहुँचाएँ और खतरे में न जाएँ। उसी प्रकार जागरूकता इंद्रियों को दबाती नहीं, बल्कि उन्हें देखती है—ताकि दूसरों की फसलों, अर्थात् दूसरों की संपदा, भूमि और संबंधों को हानि न पहुँचे। यही सबसे समृद्ध खेत हैं, जो भटकती गायों को सबसे अधिक आकर्षित करते हैं। इंद्रियों की रक्षा नियंत्रण नहीं, उत्तरदायित्व है। जब जागरूकता पहरा देती है, तो चराई अहानिकर बन जाती है और स्वतंत्रता सुरक्षित रहती है।

जब ऐसा होता है, तो वर्षा बिना प्रार्थना के होती है। प्रकाश बिना प्रयास के लौट आता है। जीवन बिना बल के बहने लगता है। और गायें फिर से स्वतंत्र रूप से चरने लगती हैं—अहंकार की दास नहीं, जागरूकता की सेवक।

इसीलिए इंद्र की कथा आज भी जीवित है।
क्योंकि अहंकार आज भी चोरी करता है।
और जागरूकता आज भी मुक्त करने की प्रतीक्षा में है।

अध्याय 6 – कामधेनु: इच्छापूर्ति करने वाला मन

प्रेमयोगी तब मुस्कुरा उठे थे, जब उन्होंने लोगों को कामधेनु को एक चमत्कारी पशु के रूप में इच्छाएँ पूरी करने वाली गाय कहते सुना। वे मुस्कुराए, क्योंकि वे जानते थे कि चमत्कार कभी मनुष्य के बाहर नहीं होते। वे भीतर ही होते हैं—इतने स्पष्ट कि दिखाई नहीं देते, और इसलिए गलत समझ लिए जाते हैं, क्योंकि लोग उन्हें वहाँ खोजते हैं जहाँ वे होते ही नहीं। कामधेनु भी शास्त्रों की अन्य पवित्र गायों की तरह कोई जादुई प्राणी नहीं थी, बल्कि यह समझाने का एक चित्र थी कि वास्तविकता भीतर से कैसे रची जाती है।

आधुनिक मन को इच्छाएँ पूरी करने वाली गाय बचकानी लग सकती है, पर इच्छाएँ पूरी करने वाला मन नहीं। और कामधेनु वास्तव में वही है। वह इंद्रियों की शुद्ध व्यवस्था है—ऐसी इंद्रियाँ जो अब बिखरी हुई नहीं हैं, अहंकार की दास नहीं हैं और अंधे आकर्षण से बाहर नहीं खिंचतीं। वह तंत्रिका तंत्र की एकाग्र अवस्था है, जहाँ इंद्रियाँ जागरूकता के अधीन संरेखित हो जाती हैं और मन इतना शांत हो जाता है कि वह प्रतिक्रिया करने के बजाय सृजन करने लगता है।

प्रेमयोगी ने इसे किसी सिद्धांत से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष जीवन से समझा। प्रारंभिक वर्षों में उनका मन एक बाज़ार की तरह था—विचार टकराते थे, इच्छाएँ एक-दूसरे से उलझती थीं, योजनाएँ आपस में लड़ती थीं। वे मेहनत बहुत करते थे, पर श्रम कभी प्रवाह नहीं बन पाता था। वे स्पष्टता चाहते थे, पर स्पष्टता आती नहीं थी। बाद में, जब जागरूकता गहरी हुई और इंद्रियाँ कोमल पड़ीं, तो कुछ विचित्र घटित हुआ। बिना संघर्ष के ही बातें सुलझने लगीं। ज़रूरत पड़ने पर लोग स्वयं सामने आने लगे। समाधान बिना बल के प्रकट होने लगे। काम जैसे अपने-आप पूरा होने लगा। तभी उन्हें पहचान हुई कि कामधेनु उनके जीवन में प्रवेश कर चुकी है—किसी वन की गाय के रूप में नहीं, बल्कि एक आंतरिक अवस्था के रूप में।

वास्तव में, प्रेमयोगी ने लंबे समय तक अपनी इंद्रियों को मुख्यतः सामाजिक भय के कारण दबाकर रखा था। उन्हें डर था कि कहीं गायें दूसरों की फसलें न चर जाएँ। इसलिए वे अनुशासित नहीं, बल्कि घुटी हुई थीं। फिर एक मुक्त-चित्त, घुमंतू स्वभाव वाले व्यक्ति के संक्षिप्त सान्निध्य से उन्हें एक नया दृष्टिकोण मिला—इंद्रियों को बाहर छोड़ा जा सकता है, भोग के लिए नहीं, बल्कि चरने के लिए, यदि जागरूकता साथ रहे और यह ध्यान रखे कि वे दूसरों के खेतों में प्रवेश न करें। धीरे-धीरे इंद्रियों ने एक लय सीख ली—बाहर जाना और नियमित रूप से लौट आना, बिना सीमा लाँघे। एक ध्यान-छवि ऐसी बनी, जो सभी इंद्रियों की प्रधान बन गई—कभी वह प्रिय की छवि होती थी, कभी गुरु की। वही छवि अन्य सबके लिए उदाहरण बन गई। क्योंकि उसका उपयोग केवल ध्यान में होता था, भोग में नहीं, इसलिए अन्य इंद्रियाँ भी संयम सीखने लगीं और अनावश्यक भौतिक संपर्क से बचने लगीं। संभव है, शास्त्र इसी प्रधान गाय को कामधेनु कहते हों—वह मुख्य गाय, जो सबको व्यवस्था में रखकर सब कुछ प्रदान करती है और स्वयं साधक को भी कोमल नियंत्रण में रखती है।

इस अर्थ में वैज्ञानिक और ऋषि बहुत भिन्न नहीं हैं। वैज्ञानिक भी अपनी इंद्रियों को पूरा खुलापन देते हैं, पर साथ ही उन्हें सावधानी से देखते हैं, ताकि वे विकृति न पैदा करें। इसी तरह वे खोज और आविष्कार करते हैं। यह तटस्थता—जो भी प्रकट हो, उसके लिए खुलापन—धीरे-धीरे उन्हें अद्वैत के निकट ले जाती है, भले ही वे उस शब्द का प्रयोग न करें। वे अद्वैत से आरंभ नहीं करते; वे वहाँ पहुँचते हैं। वे वही मार्ग उल्टे क्रम में चलते हैं—ऋषि अद्वैत दृष्टि से इंद्रियों को मुक्त करते हैं, वैज्ञानिक इंद्रियों को निष्पक्ष रखकर अद्वैत तक पहुँचते हैं।

यह चरती हुई गाय का रूपक बैठकर किए जाने वाले ध्यान में भी उतना ही लागू होता है। यदि निर्विकल्प ध्यान में प्रवेश के लिए मन को बलपूर्वक दबाया जाए, तो यह गाय को जबरन बाड़े में बंद करने जैसा है। यदि मन को बिना साक्षी भाव के सांसारिकता में खुला छोड़ दिया जाए, तो यह वसुओं द्वारा गाय के चुरा

लिए जाने जैसा है। केवल तब, जब ध्यान स्वाभाविक श्वास के साथ, साक्षी जागरूकता में बैठकर किया जाए, मन सही तरह से चरता है—जैसे सावधानीपूर्वक देखी जा रही गाय घास चरती है। वह उतना ही ग्रहण करता है, जितना जीवित और संतुष्ट रहने के लिए आवश्यक हो—अधिक नहीं, हानि नहीं, भटकाव नहीं। घास केवल जीवन को बनाए रखती है, वृद्धि नहीं करती; वैसे ही साक्षी भाव में उठते विचार मन को न्यूनतम रूप से जीवित रखते हैं, अहंकार को पोषित किए बिना।

इंद्रियाँ ही वास्तविकता रचती हैं। यह दर्शन नहीं, चेतना का भौतिक नियम है। जिसे आप बार-बार देखते हैं, वही आपका संसार बनता है। जिसे बार-बार सुनते हैं, वही आपका विश्वास बनता है। जिसे बार-बार चखते हैं, वही आपकी लालसा बनती है। जिसे बार-बार सोचते हैं, वही आपकी पहचान बनती है। जब इंद्रियाँ बिखरी हों, तो वास्तविकता अराजक हो जाती है। जब इंद्रियाँ शुद्ध हों, तो वास्तविकता सुसंगत हो जाती है। वही सुसंगति कामधेनु है।

इसीलिए कथाओं में कामधेनु राजाओं के पास नहीं, ऋषियों के पास होती है। राजा बाहरी संसार पर नियंत्रण चाहते हैं; ऋषि भीतर पर। राजा वस्तुओं से तृप्ति चाहते हैं; ऋषि इच्छा के स्रोत को ही शांत कर देते हैं। राजा कामधेनु से धन, सेना और शक्ति बढ़ाना चाहेंगे; ऋषि उससे आवश्यकता को ही विलीन कर देते हैं। इसलिए कामधेनु राजाओं के पास टिकती नहीं। वह उन्हीं के पास रहती है, जिन्हें अब उसकी ज़रूरत नहीं रहती। प्रेमयोगी ने भी भीतर से सब कुछ पाया—और आत्म-साक्षात्कार से बड़ा क्या हो सकता है? यह सब इसलिए संभव हुआ, क्योंकि उनकी इंद्रियाँ एक सीमित, जागरूक आंतरिक क्षेत्र में चरने लगी थीं—न भूखी रखी गईं, न उन्मुक्त छोड़ी गईं।

प्रेमयोगी ने अपने जीवन में यह देखा कि जब वे पुरस्कार के लिए काम करते थे, पुरस्कार उनसे दूर भागता था। जब वे जागरूकता के लिए काम करते थे, पुरस्कार छाया की तरह पीछे आता था—स्पष्टता, लेखन-क्षमता, शांति, जागरण और आत्म-साक्षात्कार के रूप में। यह जादू नहीं था, यह संरेखण था। शांत तंत्रिका तंत्र वास्तविकता को सही ढंग से देख पाता है, और वही सही दृष्टि इच्छापूर्ति बन जाती है।

प्राचीन ऋषि यह विज्ञान बिना उपकरणों के जानते थे। शांत तंत्रिका तंत्र ही शक्तिशाली तंत्रिका तंत्र है। शांत मन से स्पष्ट अनुभूति आती है, स्पष्ट अनुभूति से सही निर्णय, सही निर्णय से सफल कर्म। जब यह क्रम चलता है, तो लोग उसे चमत्कार कहते हैं, जबकि वह केवल सुसंगति है। गाय तभी दूध देती है, जब वह शांत होती है। भय, शोर और कठोरता दूध रोक देते हैं। कोमल स्पर्श, परिचित उपस्थिति और शांति दूध बढ़ाते हैं। मन भी ऐसा ही है। बेचैन मन स्पष्टता नहीं देता। भयभीत मन अंतर्दृष्टि नहीं देता। केवल शांत मन ही दूध देता है। वही कामधेनु है।

प्रेमयोगी ने यह वर्षों की क्षेत्रीय सेवा में अनुभव किया। जब वे जल्दबाज़ी में काम करते थे, तो त्रुटियाँ बढ़ जाती थीं। जब वे भीतर से धीमे होते थे, तो कठिन कार्य भी सहज हो जाते थे। उनकी शांति अदृश्य उर्वरक बन गई थी। इसी शांति से उनका बिखरा हुआ मन एकत्र हुआ।

इसीलिए कामधेनु को गाय के रूप में दिखाया गया है, किसी यंत्र या रत्न के रूप में नहीं। गाय अपने स्वभाव से ही शांति सिखाती है। वह धीरे चबाती है, गहरे विश्राम करती है, दौड़ती नहीं, पीछा नहीं करती, और कठोर घास को पोषक दूध में बदल देती है। यही शुद्ध मन का कार्य है—जीवन की कठोरता को जागरूकता, साक्षी भाव और अद्वैत से पोषण में बदल देना। प्रेमयोगी ने देखा कि क्रोध, लोभ, इच्छा और ईर्ष्या भी, यदि मानवता के भीतर और जागरूकता में रखे जाएँ, तो बाधा नहीं, पोषण बन जाते हैं। कुछ भी अस्वीकार नहीं किया गया, फिर भी सब कुछ परिष्कृत हो गया।

जब इंद्रियाँ शुद्ध होती हैं, तो इच्छाएँ स्वाभाविक रूप से पूरी होती हैं, क्योंकि वे अब हताश नहीं रहतीं। वे अस्तित्व से लड़ती नहीं, उसके साथ बहती हैं। अहंकारी इच्छा माँगती है; सचेत इच्छा आमंत्रित करती है। कामधेनु केवल आमंत्रण पर प्रतिक्रिया देती है, माँग पर नहीं।

आधुनिक मनुष्य कामधेनु को शुद्धि के बिना चाहता है—शांति बिना शांति के, परिणाम बिना सुसंगति के, चमत्कार बिना अनुशासन के। फिर वह कथाओं को झूठा कह देता है। पर कथाएँ झूठी नहीं थीं; वे गलत पढ़ी गई थीं।

कामधेनु कोई इच्छाएँ पूरी करने वाला पशु नहीं है। वह जागरूकता के अधीन संरेखित तंत्रिका तंत्र है। वह शुद्ध इंद्रियाँ हैं। वह वह आंतरिक प्रयोगशाला है, जहाँ वास्तविकता बाहर प्रकट होने से पहले आकार लेती है। जब मन शांत और अखंड होता है, तो ऊर्जा व्यर्थ नहीं जाती और जीवन स्वयं सहयोगी बन जाता है।

यह वही रहस्य है, जिसे ऋषियों ने सबसे अधिक सँभालकर रखा। क्योंकि जब भीतर की कामधेनु मिल जाती है, तो माँगने को कुछ शेष नहीं रहता। और यही सबसे बड़ी तृप्ति है।

अध्याय 7 – गोवध: सभ्यताओं का पतन

जब प्रेमयोगी ने पहली बार "गोवध" शब्द सुना, तो उन्होंने देखा कि लोगों के मन कितनी जल्दी प्रतिक्रिया देने लगते हैं। कुछ क्रोध से भर जाते हैं, कुछ उपहास करते हैं, कुछ अपराधबोध में डूब जाते हैं, कुछ इनकार कर देते हैं। बहुत कम लोग जिज्ञासा से देखते हैं। यही बात उनके लिए संकेत थी कि इस विषय को भावनात्मक रूप से पढ़ा जा रहा है, बुद्धि से नहीं। सभ्यताएँ पशुओं के कारण नहीं गिरतीं; वे उससे कहीं गहरे कारणों से ढहती हैं। गाय एक बार फिर केवल प्रतीक थी—शांत होकर यह दिखाने वाली कि वास्तव में क्या मर रहा है।

गाय के मरने पर जो वास्तव में मरता है, वह न मांस है, न परंपरा, न ही धर्म। जो मरता है, वह है अंतर्मुखता।

हर उस सभ्यता में, जो फली-फूली और फिर नष्ट हो गई, प्रेमयोगी ने एक ही अदृश्य क्रम देखा। इंद्रियाँ हिंसक हो गईं। अपराध के अर्थ में नहीं, बल्कि गति, तीव्रता और अति के अर्थ में। आँखें अधिक उत्तेजना चाहने लगीं, कान अधिक शोर, जीभ अधिक तीखे स्वाद, शरीर निरंतर सुख, और मन अंतहीन नवीनता। कुछ भी ठहरता नहीं था, कुछ भी घर नहीं लौटता था। सब कुछ बाहर की ओर दौड़ रहा था। संस्कृति, जो वास्तव में साझा संयम और साझा अर्थ का नाम है, ऐसी इंद्रिय-आक्रामकता को सहन नहीं कर सकती।

जब इंद्रियाँ कोमलता खो देती हैं, समाज संतुलन खो देता है।

प्राचीन संस्कृतियाँ इसे सहज रूप से समझती थीं। वे यह नहीं कहती थीं कि "नैतिकता की रक्षा करो"; वे कहती थीं, "गाय की रक्षा करो।" क्योंकि गाय जीवन की अहिंसक गति का प्रतीक थी। चरती हुई गाय खेत को नष्ट नहीं करती। वह उतना ही लेती है, जितना आवश्यक हो। वह धीरे चलती है, अच्छी तरह चबाती है, गहराई से विश्राम करती है। उसका पूरा लय शोषण के विपरीत है। जब यह लय सामूहिक जीवन से लुप्त हो जाती है, तब पतन शुरू होता है—अचानक नहीं, बल्कि अनिवार्य रूप से।

प्रेमयोगी ने आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति में इसे स्पष्ट रूप से देखा। लोग पहले से कहीं अधिक उपभोग कर रहे थे, फिर भी पहले से कहीं कम तृप्त थे। आनंद की जगह लत ने ले ली। गहराई की जगह गति आ गई। अर्थ की जगह शोर भर गया। बेचैनी सामान्य बन गई। इंद्रियाँ चर नहीं रही थीं; वे रौंद रही थीं। यह रौंदना किसी को नहीं छोड़ता—न प्रकृति को, न संबंधों को, न तंत्रिका तंत्र को। थकावट आम हो गई। चिंता फैशन बन गई। अवसाद अदृश्य हो गया।

यही गोवध का वास्तविक अर्थ है।

यह पशु की हत्या नहीं है; यह अनुभूति में कोमलता की हत्या है।

जब मांसाहार संस्कृति भोजन-चयन से आगे बढ़कर एक दृष्टिकोण बन जाती है, तो वह बाह्य-केन्द्रित जीवन को दर्शाती है—तेज़ निष्कर्षण, अधिकतम उपज, न्यूनतम धैर्य, तात्कालिक फल। शरीर ईंधन लेने वाली मशीन बन जाता है, खेती योग्य क्षेत्र नहीं। मन उपभोक्ता बन जाता है, सर्जक नहीं। इससे लोग अनैतिक नहीं होते, पर जड़हीन हो जाते हैं।

गाय पर हिंसा अंतर्जगत पर हिंसा है, क्योंकि गाय संयम का अंतिम दृश्य प्रतीक है। जब संयम का उपहास होता है, तब सब कुछ वैध हो जाता है। और जब सब कुछ वैध हो जाता है, तब कुछ भी अर्थपूर्ण नहीं बचता।

प्रेमयोगी ने देखा कि जिन समाजों ने संयम के प्रतीकों का मज़ाक उड़ाया, उन्होंने मौन, धैर्य, चिंतन और धीमेपन का भी उपहास किया। इन्हें कमजोरी, अक्षमता और पिछड़ापन कहा गया। गति की पूजा हुई। आक्रामकता को पुरस्कार मिला। इंद्रिय-अति सामान्य हो गई। ऐसे वातावरण में गाय का टिक पाना—शारीरिक या प्रतीकात्मक—असंभव था।

यह नैतिक तर्क नहीं है; यह तंत्रिका-विज्ञान और योग का तथ्य है।

लगातार अतिउत्तेजित तंत्रिका तंत्र सुसंगति बनाए नहीं रख सकता। वह या तो भीतर अवसाद बनकर ढह जाता है या बाहर हिंसा बनकर फूट पड़ता है। सभ्यता सामूहिक तंत्रिका-संतुलन का नाम है। जब यह संतुलन टूटता है, तो नियम बढ़ते हैं, दंड कठोर होते हैं, निगरानी फैलती है—पर शांति लुप्त हो जाती है।

प्रेमयोगी ने यह कार्यस्थलों में भी देखा। जो टीमें जागरूकता के बिना भागती थीं, वे थककर टूट जाती थीं। दबाव से चलाए गए प्रोजेक्ट बार-बार असफल होते थे। इसके विपरीत, धीमा और सजग कार्य—भले ही प्रारंभ में उपहासित हो—स्थायी परिणाम देता था। वही नियम हर जगह लागू था। इंद्रियों की हिंसा संरचना को तोड़ती है; इंद्रियों की कोमलता उसे टिकाए रखती है।

जब गाय का प्रतीकात्मक वध होता है, तब बच्चों को असीम इच्छा करना सिखाया जाता है। शिक्षा प्रतियोगिता बन जाती है। कला प्रदर्शन बन जाती है। संबंध लेन-देन बन जाते हैं। अध्यात्म मनोरंजन बन जाता है। सब कुछ ऊर्जा बहाता है; कुछ भी पोषण नहीं देता।

इसीलिए प्राचीन संस्कृतियों को निरंतर पुलिसिंग की आवश्यकता नहीं थी। उनके प्रतीक चुपचाप अनुशासन सिखाते थे। गाय प्रतिदिन यह स्मरण कराती थी कि जीवन को कोमलता से जियो, नहीं तो वह भीतर से ढह जाएगा।

प्रेमयोगी ने देखा कि आधुनिक विवाद के दोनों पक्ष यह बात चूक जाते हैं। एक पक्ष अंतर्मुख अनुशासन समझे बिना रक्षा की माँग करता है। दूसरा पक्ष अंतर्मुख पतन देखे बिना रक्षा का उपहास करता है। दोनों एक ही क्षति पर प्रतिक्रिया दे रहे होते हैं।

सभ्यताओं का पतन सदा एक ही क्रम से होता है—अंतर्मुख संयम की हानि, इंद्रिय-हिंसा का उदय, अर्थ का पतन, और अंततः भौतिक विनाश। इमारतें गिरने से पहले मन ढह चुके होते हैं।

इसलिए गोवध कोई एक क्रिया नहीं, बल्कि एक अवस्था है।

वह अवस्था, जहाँ समाज यह तय कर लेता है कि पोषण से अधिक निष्कर्षण, लय से अधिक गति, और पाचन से अधिक उपभोग महत्त्वपूर्ण है। यह निर्णय सामूहिक रूप से हो जाए, तो पतन केवल समय का प्रश्न रह जाता है।

प्रेमयोगी ने लोगों से बहस नहीं की; उन्होंने पैटर्न देखे। जहाँ भी कोमलता बची रही—भोजन में, काम में, पशुओं के प्रति, भूमि के प्रति, विचार के प्रति—वहाँ स्थिरता बनी रही। जहाँ इंद्रिय-हिंसा सामान्य हुई, वहाँ अराजकता आई। यह विचारधारा नहीं, अवलोकन था।

इसीलिए गाय की रक्षा भय या कट्टरता का विषय नहीं थी। वह अंतर्जगत के अंतिम दृश्य स्मरण की रक्षा थी। जब वह स्मरण मिट जाता है, तो इंद्रियों को शिकारी बनने से कोई नहीं रोकता।

आधुनिक समाज इसे विश्वास का प्रश्न समझता है, जबकि यह शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान और जागरूकता का प्रश्न है। स्थायी रूप से उत्तेजित तंत्रिका तंत्र पर शांत समाज नहीं बनाया जा सकता।

प्रेमयोगी शांत स्वर में कहते थे कि गाय को सुरक्षा की ज़रूरत नहीं थी; मनुष्य को थी। गाय कहीं न कहीं जीवित रह जाएगी; मनुष्य की अंतर्मुखता नहीं।

यह अध्याय लड़ने का आह्वान नहीं है; देखने का निमंत्रण है। जब गाय मरती है, तब सभ्यता पहले ही केवल बाह्य जीवन चुन चुकी होती है। और केवल बाह्य जीवन, चाहे कितना ही उन्नत क्यों न हो, अंततः स्वयं को खा जाता है।

इस समझ से विषय धार्मिक नहीं रहता; सभ्यतागत बन जाता है। और तब समाधान भी स्पष्ट हो जाता है—अनुभूति में कोमलता लौटाओ, इंद्रियों में अनुशासन लौटाओ, और जीवन में जागरूकता लौटाओ। तभी गाय लौटती है—सड़क पर नहीं, बल्कि सभ्यता के केंद्र में।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी, जब मनुष्य जीवन के मूल नैतिक पथ से भटकता है और मुक्ति के मार्ग से दूर जाता है, तो प्रकृति स्वाभाविक रूप से सहयोग वापस खींच लेती है। प्रकृति क्रूर नहीं होती; वह केवल सहयोग रोक लेती है। वर्षा असंतुलित हो जाती है, धूप का क्रम बिगड़ता है, मौसम प्रतिकूल हो जाता है, और असमय घटनाएँ घटने लगती हैं—जिन्हें हम आज देख रहे हैं। प्रदूषण केवल इसका दृश्य माध्यम है। जब भी मानवीय कर्म समझ और आंतरिक औचित्य के बिना होता है, वह हिंसा बन जाता है। जब शांत विकल्पों को पहले नहीं खोजा जाता, तब कर्म हिंसा बन जाता है। जब निष्कर्षण, उपभोग और भौतिक विस्तार वास्तविक आवश्यकता से अधिक हो जाते हैं, तब भी वह हिंसा है। और जब आध्यात्मिक विकास के ऊपर केवल भौतिक विस्तार को रखा जाता है, वही गहन अर्थ में गो-हिंसा है।

भागवत की एक कथा अंधकार में हुई एक दुखद भूल बताती है। एक वीर पुरुष तलवार लेकर गौशाला में प्रवेश करता है, यह सोचकर कि शेर ने गाय पर आक्रमण किया है। रात के भ्रम में वह गाय को ही शेर समझकर उसका गला काट देता है। सत्य प्रकट होने पर उसका पिता उसे घर से निकाल देता है और ब्राह्मणत्व के नाश का शाप देता है। बाहरी रूप से कथा कठोर लगती है, पर उसका आंतरिक अर्थ अत्यंत सटीक है। यहाँ गाय इंद्रियाँ और अंतर्जगत है, शेर भय से जन्मा कल्पित संकट है, और अंधकार जागरूकता के अभाव का प्रतीक है। यह हिंसा जानबूझकर नहीं, गलत पहचान से होती है—और यही सबसे विनाशकारी मानवीय भूल है।

प्रेमयोगी ने अपने जीवन में इसका उल्टा मार्ग चुना। उन्होंने न इंद्रियों को छोड़ दिया कि वे सदा के लिए चुरा ली जाएँ, न उन्हें बाड़े में बाँधकर मार डाला। उन्होंने निरंतर, कोमल जागरूकता बनाए रखी। जैसे-जैसे जागरूकता बनी रही, भीतर का अंधकार अपने-आप मिटता गया। शेर गायब हो गया—क्योंकि वह कभी था ही नहीं। जो बचा, वह था पोषण, स्पष्टता और यह निश्चय कि गाय सदा घर पर ही थी।

अध्याय 8 – वैज्ञानिक समानताएँ: तंत्रिका तंत्र एक गाय के रूप में

प्रेमयोगी अक्सर मुस्कुरा देते थे, जब लोग कहते थे कि विज्ञान और शास्त्र एक-दूसरे के विरोधी हैं। उनके लिए यह केवल एक ही सत्य की दो भाषाएँ थीं। विज्ञान माप और तंत्र की भाषा में बोलता है, शास्त्र प्रतीकों और कथाओं की भाषा में। एक यंत्रों का प्रयोग करता है, दूसरा चित्रों का। पर दोनों एक ही मानव तंत्रिका तंत्र, एक ही मन, एक ही व्यवहार और एक ही परिणामों का अवलोकन करते हैं। यह अध्याय उन लोगों के लिए है, जो विश्वास से अधिक प्रमाण पर भरोसा करते हैं, क्योंकि आधुनिक विज्ञान अनजाने में बार-बार प्राचीन "गाय" रूपक की पुष्टि करता जा रहा है।

आज का तंत्रिका-विज्ञान खुले रूप से स्वीकार करता है, जिसे योगियों ने शांत भाव से जाना था—मस्तिष्क कोई आदेश देने वाला शासक नहीं है, वह एक खोजी है। न्यूरॉन्स लगातार बाहर की ओर हाथ बढ़ाते रहते हैं, संकेत खोजते हैं, उत्तेजना चाहते हैं। डोपामिन तंत्र आनंद मिलने पर नहीं, बल्कि आनंद की प्रत्याशा पर सक्रिय होता है। यह वही चराई है। तंत्रिका तंत्र तृप्ति नहीं चाहता, वह पीछा चाहता है। यदि उसे बिना निगरानी छोड़ दिया जाए, तो वह एक उत्तेजना से दूसरी उत्तेजना की ओर भागता रहता है, ठीक वैसे ही जैसे गाय एक घास के टुकड़े से दूसरे टुकड़े की ओर भटकती रहती है। आधुनिक मनोविज्ञान इसे "रिवार्ड-सीकिंग बिहेवियर" कहता है। प्राचीन शास्त्रों ने इसे बस "गो" कहा।

प्रेमयोगी ने इसे पुस्तकों से पहले अपने शरीर और मन में देखा था। जब भी उनकी इंद्रियों को बिना जागरूकता के खुला छोड़ दिया गया—अंतहीन जानकारी, निरंतर प्रतिक्रिया, लगातार संलग्नता—मन शोर से भर गया, बिखर गया और थक गया। जब इंद्रियों को कठोरता से दबाया गया, तो तंत्र ने विद्रोह किया। पर जब इंद्रियों को सजग दृष्टि के अंतर्गत कोमलता से चलने दिया गया, तो कुछ विलक्षण हुआ—तंत्रिका तंत्र सुसंगति में आ गया। गायें चरती रहीं, पर बिखरी नहीं।

आधुनिक विज्ञान अब उस अवस्था को नाम देता है, जब यह चराई नियंत्रण से बाहर हो जाती है—संवेदी अतिभार। बहुत अधिक प्रकाश, बहुत अधिक ध्वनि, बहुत अधिक सूचना, बहुत अधिक गति। परिणाम होता है चिंता, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, अवसाद और थकावट। यह नैतिक असफलता नहीं है; यह तंत्रिका थकान है। तंत्रिका तंत्र अनंत उत्तेजना को पचा नहीं सकता। जब पाचन असफल होता है, तो विषाक्तता प्रकट होती है—मानसिक और भावनात्मक रूप से।

यहीं प्रत्याहार का प्रवेश होता है, रहस्यवाद के रूप में नहीं, बल्कि आवश्यकता के रूप में। प्रत्याहार इंद्रियों को बंद करना नहीं है; यह अत्यधिक उत्तेजना से ध्यान को हटाना है, ताकि तंत्रिका तंत्र स्वयं को पुनः संतुलित कर सके। वैज्ञानिक भाषा में यह तनाव-प्रतिक्रिया का शमन है। योगिक भाषा में यह रात होने से पहले गायों को घर लौटा लाना है—बलपूर्वक दमन से नहीं, बल्कि समझदारी से। शरीर-विज्ञान दर्शन और सनातन क्वांटम दर्शन से अधिक प्रेमपूर्ण और बुद्धिमान मार्ग क्या हो सकता है, जो बल की जगह समझ से शरीर और मन का मार्गदर्शन करते हैं। प्रेमयोगी ने प्रत्याहार को प्रयास के रूप में नहीं, राहत के रूप में अनुभव किया। जैसे ही उत्तेजना घटी और जागरूकता गहरी हुई, तंत्र ने स्वयं को स्वाभाविक रूप से स्वस्थ कर लिया। विचार धीमे पड़े, श्वास कोमल हुई और ऊर्जा लौट आई।

यह समानता और स्पष्ट होती है, जब हम आंत-मस्तिष्क संबंध को देखते हैं। आधुनिक अनुसंधान अब यह स्पष्ट रूप से कहता है कि माइक्रोबायोम—आंतों के भीतर जीवाणुओं का पारिस्थितिक तंत्र—मनोदशा, संज्ञान, प्रतिरक्षा और यहाँ तक कि निर्णय-क्षमता को भी प्रभावित करता है। आंतरिक पारिस्थितिकी बाहरी व्यवहार को आकार देती है। प्राचीन संस्कृति ने इस सत्य को प्रतीकात्मक रूप से गोबर और गोमूत्र के माध्यम से व्यक्त किया—अंधविश्वास के रूप में नहीं, बल्कि सूक्ष्मजीविक बुद्धि की पहचान के रूप में। गोबर

को कभी गंदगी के रूप में नहीं पूजा गया; उसे जीवित पारिस्थितिकी के रूप में सम्मान दिया गया। वह मिट्टी को स्थिर करता है, फसलों की रक्षा करता है, स्थानों को शुद्ध करता है और संतुलन लौटाता है।

प्रेमयोगी ने यह भी पाया कि जब गोबर को शरीर-विज्ञान दर्शन की दृष्टि से देखा गया—कचरे के रूप में नहीं, बल्कि अपने-आप में पूर्ण जीवित तंत्र के रूप में—तो वह स्वतः शांति, स्थिरता, अद्वैत और आनंद ले आया। दौड़ते विचार बिना किसी दमन के स्वयं ही धीमे पड़ गए और एकत्र हो गए। इससे उन्हें समझ आया कि गोबर मृत पदार्थ नहीं है; वह अपने-आप में एक पूर्ण जीवित तंत्र है। वास्तव में, प्रत्येक जीवित कोशिका एक पूर्ण जीवन-एकक है, जिसमें वही मूल बुद्धि निहित है, जो मनुष्य में है। गोबर में ऐसे अरबों जीवन-एकक होते हैं, जो परस्पर तथा बाहरी वातावरण और सामाजिक परिवेश के साथ पूर्ण सामंजस्य में क्रिया करते हैं। इस दृष्टि से देखने पर वही समग्रता, संतुलन और परस्पर-संबंध दिखाई देता है, जो मानव जीवन और जागरूकता के नियमों को संचालित करता है।

व्यावहारिक कार्यों से प्रेमयोगी ने इसे गहराई से जाना। गायों, खेतों, खाद और मिट्टी के साथ काम करते हुए उन्होंने देखा कि सही पाचन होने पर कचरा कचरा नहीं रहता। शांत और संतुलित गाय से निकला गोबर भूमि को पोषण देता है। तनावग्रस्त और भटकी हुई गाय का गोबर दुर्गंधयुक्त और रोगकारक होता है। यही सिद्धांत भीतर भी लागू होता है। शांत जागरूकता से गुज़रे विचार बुद्धि को पोषण देते हैं। तनाव और अतिउत्तेजना से उपजे विचार चिंता और आक्रामकता में सड़ जाते हैं।

इसी कारण गाय तंत्रिका तंत्र का इतना सटीक प्रतीक है। डरी हुई गाय कम दूध देती है। तनावग्रस्त तंत्रिका तंत्र कम स्पष्टता देता है। जल्दी-जल्दी हाँकी गई गाय बीमार पड़ जाती है। जल्दबाज़ मन विकृत हो जाता है। किसी नैतिक निर्णय की आवश्यकता नहीं होती; जैविकी स्वयं नियम लागू कर देती है।

आधुनिक विज्ञान यह भी पुष्टि करता है कि सृजनशीलता, अंतर्दृष्टि और सीख अतिउत्तेजित अवस्थाओं में उत्पन्न नहीं होतीं। वे शांत, सुसंगत अवस्थाओं में प्रकट होती हैं, जहाँ ध्यान स्थिर और विचलन न्यूनतम होता है। मस्तिष्क-चित्रण अध्ययनों से पता चलता है कि सर्वाधिक समन्वित मस्तिष्क गतिविधि तब होती है, जब तंत्र शिथिल किंतु सतर्क होता है। यही अवस्था योगियों ने सत्त्व कही। यही अवस्था एक गाय की होती है, जो शांत भाव से जुगाली करती है—आँखें आधी बंद, शरीर स्थिर, तंत्रिका तंत्र संतुलित। यह सत्त्व अवस्था अद्वैत-आधारित व्यावहारिक दर्शनों, जैसे शरीर-विज्ञान दर्शन और क्वांटम दर्शन, से सहज रूप से उत्पन्न होती है। ये बिना जड़ता के तुरंत शांति लाते हैं। मन शांत रहता है, पर पूरी तरह जाग्रत। क्योंकि शरीर में कोई भी तंत्र वास्तव में सोता नहीं; सब कुछ चुपचाप और बुद्धिमानी से चलता रहता है। यही नियम बाहरी संसार में भी लागू होता है। अद्वैत आंतरिक और बाह्य लयों को संरेखित करता है और एक ऐसी स्थिति बनाता है, जो शांत भी है और पूर्णतः जीवंत भी।

प्रेमयोगी ने देखा कि उनके सर्वोत्तम विचार कभी दबाव में नहीं आए। वे शांत गतिविधियों में आए—चलते समय, मिट्टी के साथ काम करते हुए, पशुओं की देखभाल करते हुए, मौन में बैठते हुए। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि शरीर-विज्ञान दर्शन और सनातन धर्म आधारित क्वांटम दर्शन के साथ जीने पर यह शिथिल-सतर्कता अस्थायी अभ्यास नहीं रहती, बल्कि जीवन की स्वाभाविक अवस्था बन जाती है। जीवन स्वयं संतुलित प्रवाह बन जाता है, जहाँ जागरूकता जागी रहती है, कर्म मानवीय रहते हैं और विकास बिना तनाव के होता है। दूध के लिए गाय का शांत होना आवश्यक है। शांति हटते ही स्पष्टता भी हट जाती है। यह विश्वास नहीं था; यह बार-बार का अवलोकन था।

बाहरी पारिस्थितिकी भी इसी सत्य को प्रतिबिंबित करती है। जब निष्कर्षण पुनर्जनन से अधिक हो जाता है, तो तंत्र ढह जाते हैं। संतुलित चराई से वन टिकते हैं। प्रवाह का सम्मान होने पर नदियाँ जीवित रहती हैं। अतिउपयोग पतन लाता है, अल्पउपयोग जड़ता। संतुलन जीवन को टिकाए रखता है। यही नियम तंत्रिका

तंत्र पर भी लागू होता है। अतिउत्तेजना थकावट लाती है, दमन जड़ता, और संतुलित सहभागिता जीवन्तता।

इसी कारण जब इंद्रिय-अति सामान्य बन जाती है, तो सभ्यताएँ ढहती हैं। यह विचारधारा नहीं, बड़े पैमाने पर शरीर-विज्ञान है। जो समाज ध्यान को नियंत्रित नहीं कर सकता, वह व्यवहार को भी नियंत्रित नहीं कर सकता। कोई भी कानून तंत्रिका संतुलन का स्थान नहीं ले सकता। प्राचीन संस्कृतियों ने यह समझ प्रतीकों में संजो दी, क्योंकि उनके पास प्रयोगशालाएँ नहीं थीं। आज हमारे पास प्रयोगशालाएँ हैं, और वे वही सत्य पुनः खोज रही हैं।

प्रेमयोगी ने विज्ञान को नकारा नहीं; वे अनजाने में उसे जी रहे थे। उनका शरीर-विज्ञान दर्शन कोई सिद्धांत नहीं था; वह जीवित तंत्रिका-विज्ञान था। अद्वैत जागरूकता के अंतर्गत इंद्रियों को चरने देने से उनका तंत्रिका तंत्र दीर्घकालिक सुसंगति में आ गया। ऊर्जा चिंता में रिसना बंद हो गई। ध्यान स्थिर हो गया। कार्य-गुणवत्ता बढ़ी। संबंध कोमल हुए। स्वास्थ्य सुधरा। जागरूकता गहरी हुई।

यह अध्याय शास्त्रों को विज्ञान से सिद्ध करने का प्रयास नहीं है, न ही आध्यात्म को जीवविज्ञान में घटाने का। यह यह देखने का निमंत्रण है कि दोनों एक ही भू-भाग का वर्णन करते हैं। गाय कभी केवल पशु-प्रतीक नहीं थी। वह जीवन को बनाए रखने की एक कार्यात्मक रूपरेखा थी—भीतर भी और बाहर भी।

संशयवादी पाठक के लिए यह पर्याप्त होना चाहिए। आपको यह मानने के लिए विश्वास की आवश्यकता नहीं कि अतिउत्तेजना तंत्रिका तंत्र को क्षति पहुँचाती है। आपको यह मानने के लिए आस्था की आवश्यकता नहीं कि शांति स्पष्टता लौटाती है। आपको धर्म की आवश्यकता नहीं कि संतुलित चराई पारिस्थितिक तंत्र को टिकाए रखती है। प्राचीन रूपक ने बस इन सत्यों को एक जीवित चित्र में जोड़ दिया।

जब विज्ञान “डोपामिन असंतुलन” कहता है, शास्त्र “खोई हुई गाय” कहते हैं। जब विज्ञान “संवेदी अतिभार” कहता है, शास्त्र “रात होना” कहते हैं। जब विज्ञान “तंत्रिका तंत्र का पुनर्संतुलन” कहता है, शास्त्र “प्रत्याहार” कहते हैं। भाषा अलग है, वास्तविकता एक ही है।

एक बार यह समझ आ जाए, तो गाय सड़क या मंदिर में नहीं, बल्कि खोपड़ी, आंत, श्वास और ध्यान के भीतर खड़ी दिखती है। और जब तंत्रिका तंत्र के साथ गाय जैसा व्यवहार किया जाता है—उसे ठीक से खिलाया जाता है, कोमलता से चरने दिया जाता है, न पीटा जाता है न उपेक्षित किया जाता है—तो वह वह देता है, जिसकी कोई तकनीक गारंटी नहीं दे सकती: स्थिर स्पष्टता, सतत ऊर्जा और सत्य को धारण करने वाला मन।

यह अब केवल रूपक नहीं है।
यह मापी जा सकने वाली जीवन-प्रक्रिया है।

अध्याय 9 – आधुनिक भारत के लिए गो-रक्षा का नया अर्थ

प्रेमयोगी को हमेशा यह लगा कि गो-रक्षा को लेकर सबसे बड़ा खतरा विरोध नहीं, बल्कि उसका सरलीकरण है। जो बात सूक्ष्म होती है, जब उसे ज़रूरत से ज़्यादा सरल बना दिया जाता है, तो वह कठोर हो जाती है, और कठोरता अंततः हिंसा में बदल जाती है। नारे और प्रतिक्रियाओं तक सिमट कर गो-रक्षा ने अपनी बुद्धि खो दी। भावना तक सीमित होकर उसने अपनी शक्ति खो दी। ज़बरदस्ती और दंड तक सिमट कर उसने अपनी आत्मा खो दी। जो कभी आंतरिक और बाह्य सामंजस्य की एक जीवित व्यवस्था थी, वह मतों के युद्ध का मैदान बन गई। यह अध्याय न किसी का बचाव करने के लिए है और न किसी पर आक्रमण करने के लिए, बल्कि अर्थ को लौटाने के लिए है, क्योंकि केवल अर्थ ही उपचार करता है।

अपने मूल अर्थ में गो-रक्षा का मतलब केवल पशु-संरक्षण कभी नहीं था। उसका अर्थ था उस तत्व की रक्षा, जिससे जीवन कोमल, टिकाऊ और भीतर से जुड़ा रह सके। गाय को इस सिद्धांत का बाहरी प्रतीक इसलिए चुना गया, क्योंकि वह संयम, पोषण, धैर्य और अहिंसा को प्रत्यक्ष रूप से दिखाती है। पर मूल कार्य सदा भीतर का था। जब आंतरिक साधना लुप्त हुई, तो लोगों ने केवल प्रतीक को पकड़ लिया। यहीं से कट्टरता पैदा हुई—भक्ति से नहीं, विस्मृति से।

आधुनिक भारत के लिए गो-रक्षा का पुनर्व्याख्यान करते हुए प्रेमयोगी ने समझा कि आज के मन से उसकी भाषा में बात करनी होगी, बिना कल की बुद्धि का अपमान किए। गाय को उसके सही स्थान पर लौटाना होगा—न हथियार के रूप में, न मूर्ति के रूप में, बल्कि एक रूपरेखा के रूप में।

गो-रक्षा का पहला और सबसे महत्वपूर्ण आयाम इंद्रिय-अनुशासन है। आज का भारत संसाधनों की कमी से नहीं, संयम की कमी से पीड़ित है। आँखें बिना रुके उपभोग करती हैं, कान शोर को बिना विराम ग्रहण करते हैं, मन बिना पचाए स्क्रॉल करता रहता है। यह इंद्रिय-हिंसा है। इस स्तर पर गो-रक्षा का अर्थ है इंद्रियों को सही ढंग से चरना सिखाना—ऐसा उपभोग जो रौंदे नहीं, ऐसा आनंद जो लत न बने, ऐसा जुड़ाव जो थकावट न दे। प्रेमयोगी ने देखा कि जब तक लोग अपने ध्यान को नियंत्रित करना नहीं सीखते, तब तक न कोई क़ानून, न पुलिस और न कोई विचारधारा शांति ला सकती है। इंद्रिय-अनुशासन दमन नहीं है; वह शिक्षा है। वह ग्वाले का यह जानना है कि कहाँ चलना है और कहाँ रुकना है।

दूसरा आयाम शिक्षा-सुधार है। आज की शिक्षा सूचना खिलाती है, पर जागरूकता को भूखा रखती है। बच्चों को देखने से पहले प्रतिस्पर्धा सिखाई जाती है। स्पष्टता से ज़्यादा गति को इनाम मिलता है। अर्थ से ज़्यादा अंकों को। यह वैसा ही है जैसे बछड़ों को ट्रैफ़िक में धकेल देना और उसे विकास कहना। शिक्षा में गो-रक्षा का अर्थ है संज्ञान और जागरूकता के बीच संतुलन लौटाना। इसका मतलब है बच्चों को बैठना सिखाना, साँस को महसूस करना सिखाना, अपने ही मन को देखना सिखाना, प्रतिक्रिया से पहले ठहरना सिखाना। प्रेमयोगी को पूरा विश्वास था कि विद्यालयों में रोज़ के पाँच मिनट का भी आंतरिक ध्यान किसी भी पाठ्यक्रम सुधार से अधिक राष्ट्रीय स्वास्थ्य देगा। जो राष्ट्र अपने बच्चों को अपनी इंद्रियों को देखना नहीं सिखा सकता, उससे किसी भी चीज़ के सम्मान की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

प्रेमयोगी को याद है कि उन्होंने विज्ञान को भीतर से पढ़ा—इतनी गहराई से कि वह उनके शरीर के हर कण और मन के हर कोने में उतर गया। यह केवल बाहरी परिश्रम से नहीं हुआ, बल्कि इंद्रिय-अनुशासन से हुआ—बाहर से ज़्यादा भीतर देखने से। उन्होंने बहुत अध्ययन किया, कभी-कभी अत्यधिक भी, पर थकान, तनाव या निराशा नहीं आई। उलटे, जितना पढ़ते गए, उतनी प्रेरणा बढ़ती गई। ज्ञान बोझ नहीं बना; वह ऊर्जा बन गया। पढ़ना प्रयास नहीं, पोषण जैसा लगने लगा। जानकारी जीया हुआ बोध बन गई। इस आंतरिक अवशोषण से एक शांत आनंद पैदा हुआ, जिसने और गहरे अध्ययन की प्रेरणा दी। धीरे-धीरे एक ऐसी अवस्था आई, जहाँ सीखना इतना स्वच्छ और आनंदमय हो गया कि वह स्वाभाविक रूप से स्वप्न-

अवस्था में आत्मबोध की झलक में बदल गया—यह तीसरी आँख का जागरण था, किसी कल्पना के रूप में नहीं, बल्कि धारणा की तीव्र स्पष्टता के रूप में। उनकी प्रयोगशाला भीतर थी, प्रयोग भीतर थे और वैज्ञानिक भी भीतर। फिर भी उन्होंने बाहरी रूपों का विरोध नहीं किया, बस भीतर की दुनिया को बाहर के आकर्षण में खोने नहीं दिया। भीतर एक सजीव और सटीक संसार बनता गया। साथ ही उन्होंने अपने कई सहपाठियों को देखा, जो भारी प्रयास से बाहर-बाहर पढ़ते थे, पर भीतर से उलझे और थके रहते थे। कुछ के अंक उनसे अधिक थे, पर भीतर बेचैनी बनी रही। प्रेमयोगी के मन में कोई तुलना या कड़वाहट नहीं थी। वे बस इतना जानते थे कि अंक स्मृति को मापते हैं, और संतोष समझ को। उस कसौटी पर वे स्वयं को अधिक शांत, समृद्ध और पूर्ण पाते थे।

तीसरा आयाम भोजन-सुधार है, जहाँ भ्रम सबसे अधिक है। गो-रक्षा का अर्थ यह नहीं कि सब एक-सा भोजन करें। इसका अर्थ है समझ, अनुपात और ज़िम्मेदारी के साथ खाना। आवश्यकता से अधिक भोजन शरीर, पशु और भूमि—सबके प्रति हिंसा बन जाता है। प्रेमयोगी ने देखा कि ऊर्जा देने वाले खाद्य पदार्थों का न्यूनतम और सचेत उपयोग विकास में सहायक होता है, जबकि अति रोग, आक्रामकता और असंतुलन लाती है। प्रश्न शाकाहार बनाम मांसाहार का नहीं है; प्रश्न जागरूकता बनाम विवशता का है। जागरूकता के साथ लिया गया भोजन पोषण देता है; अहंकार के साथ लिया गया भोजन विनाश करता है। यहाँ गो-रक्षा का अर्थ है खाने की गरिमा लौटाना, थाली पर पहरा बैठाना नहीं। जीभ भी एक इंद्रिय है, और इसलिए एक गाय है। इस अर्थ में गो-रक्षा जीभ की रक्षा है—समझदारी से खाने के द्वारा।

प्रेमयोगी ने यह भी देखा कि अद्वैत शरीर-विज्ञान दर्शन के माध्यम से जागरूकता को स्थापित करना कभी-कभी वनस्पति भोजन की तुलना में पशु-उत्पादों से अधिक सहज होता था। यह पसंद या भोग का प्रश्न नहीं था, बल्कि प्रतिक्रिया-क्षमता का था। पशु-उत्पाद अधिक गतिशील, सजीव और संगठित जैविक तंत्र से आते हैं, जो मानव शरीर-क्रिया के अधिक निकट है। इस समानता के कारण जागरूकता जल्दी प्रवाहित हो पाती थी और तांत्रिक साधना में त्वरित परिणाम देती थी। यह त्वरितता प्रेमयोगी के लिए महत्वपूर्ण थी, क्योंकि गहरी एकांत-स्थितियाँ सांसारिक अव्यवस्था के बीच बहुत थोड़े समय के लिए ही उपलब्ध होती हैं। यदि मार्ग बहुत धीमा होता, तो वह नाज़ुक एकांत ही खो जाता। सचेत और न्यूनतम उपयोग से यह मार्ग उन्हें कुंडलिनी जागरण और उससे उत्पन्न आत्मबोध तक अधिक शीघ्र ले गया—बिना ज़बरदस्ती, बिना दमन और बिना अनावश्यक टालमटोल के।

चौथा और सबसे तात्कालिक आयाम ध्यान-अर्थव्यवस्था का नियंत्रण है। आधुनिक तकनीक मानवता की अब तक की सबसे आक्रामक गाय-चोर है। सूचनाएँ, विज्ञापन, अंतहीन फ़ीड—सब ध्यान को जानबूझकर बिखेरने के लिए बने हैं। कोई भी प्राचीन असुर स्मार्टफ़ोन एल्गोरिद्म जितना दक्ष नहीं था। प्रेमयोगी ने स्पष्ट देखा कि ध्यान-अनुशासन के बिना हर सुधार विफल हो जाता है। डिजिटल युग में गो-रक्षा का अर्थ है कब डिस्कनेक्ट होना है यह जानना, सूचना को सचेत रूप से ग्रहण करना, और तंत्रिका तंत्र को मुनाफ़े के लिए पाले जाने से बचाना। यह तकनीक-विरोध नहीं, मानव-पक्षधरता है। जागरूकता के बिना तकनीक शोषण है। उनके स्वयं के अद्वैत दर्शनों ने इसमें भी उनकी गहरी सहायता की।

यहाँ लोग पूछते हैं—यदि गो-रक्षा भीतर की बात है, तो पशु-संरक्षण क्यों ज़रूरी है। प्रेमयोगी का उत्तर सरल था। प्रतीक ज़रूरी हैं, क्योंकि मनुष्य देह के माध्यम से सीखता है। अमूर्त सिद्धांत जल्दी मर जाते हैं; जीवित प्रतीक टिके रहते हैं। पशुओं, विशेषकर कोमल और अहिंसक पशुओं की रक्षा, शिक्षा को दैनिक जीवन में जीवित रखती है। यह याद दिलाती है कि हर चीज़ उपभोग के लिए नहीं होती। पर भीतर की रक्षा के बिना बाहरी रक्षा खोखली है, और बाहरी संवेदनशीलता के बिना भीतर की रक्षा अहंकारी हो जाती है। दोनों का साथ होना आवश्यक है।

प्रेमयोगी का अपना जीवन इसका कार्यशील उदाहरण था। एक पशु-चिकित्सक के रूप में उन्होंने न पशुओं का आदर्शीकरण किया, न उन्हें वस्तु बनाया। वे उनके साथ व्यावहारिक, करुणामय और बिना विचारधारा के काम करते थे। शरीर-विज्ञान दर्शन से उपजी शांति ने उन्हें क्रूरता के बिना दृढ़ और घृणा के बिना सख़्त बनना सिखाया। यही संतुलन सार्वजनिक जीवन में भी उतरना चाहिए—ऐसा उनका विश्वास था।

एक और बात उन्होंने देखी कि शरीर-विज्ञान दर्शन का प्रयोग अन्य पशुओं की तुलना में गाय के शरीर पर अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ, विशेषकर तब जब गाय शांत, सहज और आनंदित अवस्था में थी—हालाँकि यह हर अवस्था में काम करता रहा। मनुष्यों पर इसे लागू करना कठिन था, क्योंकि मनुष्य को लगता है कि उसे बहुत गहराई से देखा जा रहा है, जिससे प्रतिरोध पैदा होता है। कोमल या रोगी पशुओं पर यह जागरूकता सहज रूप से उतर जाती थी, क्योंकि वे भय या निर्णय का प्रतिरोध नहीं करते और अक्सर राहत के लिए उसे स्वीकार कर लेते हैं। उग्र पशु भी धीरे-धीरे शांत होने लगते थे, क्योंकि भय, जजमेंट और बल के अभाव में उनकी आंतरिक अशांति स्वयं बैठ जाती थी।

विदेशी पर्यटकों द्वारा बार-बार बताया गया एक तथ्य यह भी है कि भारत में गायें सड़कों पर खुले घूमती हैं—बिना नियंत्रण, बिना आश्रय और हर तरह की यातना के संपर्क में। वे कूड़ा खाती हैं, यहाँ तक कि किलो-किलो प्लास्टिक और पॉलिथीन। इससे सड़क दुर्घटनाएँ होती हैं, जनता को चोट पहुँचती है और विशेषकर सींग वाले सांडों से गंभीर नुकसान होता है। क्या यह गाय-यातना नहीं है, और उसके साथ-साथ मानव-यातना भी? गो-सदन बनाए गए हैं, पर वे भटकी हुई आबादी का बहुत छोटा हिस्सा ही संभाल पाते हैं, जबकि संख्या बढ़ती जा रही है। प्रेमयोगी ने स्वयं देखा है कि लोग आर्थिक कारणों से सांडों और नर बछड़ों को छोड़ देते हैं। एक अतिरिक्त या अनुपयोगी पशु को पालना साधारण परिवारों के लिए अत्यधिक महँगा हो गया है। स्पष्ट है कि वह समय आ रहा है, जब गो-रक्षा को केवल भावनात्मक या प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि व्यावहारिक, नैतिक और बुद्धिमान ढंग से पुनर्परिभाषित करना होगा, ताकि वह गायों और मनुष्यों—दोनों की रक्षा करे, न कि चुपचाप दोनों को हानि पहुँचाए।

न्यायालयों से बात करते समय प्रेमयोगी का मानना था कि धार्मिक भावना नहीं, संवैधानिक और मनोवैज्ञानिक भाषा का प्रयोग होना चाहिए। न्यायालय तर्क, संतुलन और हानि-न्यूनन को समझते हैं। गो-रक्षा को सार्वजनिक स्वास्थ्य, पारिस्थितिक संतुलन, मानसिक कल्याण और सामाजिक सौहार्द की रक्षा के रूप में समझाया जा सकता है। हिंसा—चाहे पशुओं के प्रति हो या मनुष्यों के प्रति—समाज को अस्थिर करती है और दीर्घकालिक लागत बढ़ाती है। इंद्रिय-हिंसा भी अपराध को जन्म देती है, जैसे शारीरिक हिंसा देती है। यह आस्था नहीं, प्रत्यक्ष पैटर्न है।

युवाओं से बात करते समय भाषा फिर बदलनी चाहिए। युवा आदेश से नहीं, स्पष्टता से जुड़ते हैं। प्रेमयोगी गो-रक्षा को नशे से मुक्ति, थकावट से मुक्ति और शोषण से मुक्ति के रूप में समझाते। वे कहते—यदि तुम अपने ध्यान को नियंत्रित नहीं कर सकते, तो कोई और करेगा। अपनी इंद्रियों की रक्षा करना अपने भविष्य की रक्षा करना है। यहाँ गाय प्रतिबंध का नहीं, आत्म-सम्मान का प्रतीक बन जाती है।

अधिकारियों और प्रशासकों से बात करते समय व्यावहारिकता आवश्यक है। गो-रक्षा को संसाधन-प्रबंधन के रूप में देखा जाना चाहिए—भूमि, जल, पशु, लोग और ध्यान। अति हमेशा पतन लाती है; संतुलन स्थिरता। प्रशासक इस भाषा को समझते हैं, क्योंकि संतुलन टूटने पर वही टूटन सँभालते हैं। प्रेमयोगी जानते थे कि जैसे ही अधिकारी गो-रक्षा को धार्मिक माँग नहीं, शासन-सिद्धांत के रूप में देखेंगे, प्रतिरोध नरम पड़ेगा।

आधुनिक भारत की सबसे बड़ी भूल यह है कि वह कट्टरता और अस्वीकृति को ही दो विकल्प मान लेता है। ऐसा नहीं है। तीसरा मार्ग है—बुद्धिमान व्याख्या। सही ढंग से समझी गई गो-रक्षा विभाजन की रेखा नहीं, एकता की रूपरेखा बन जाती है।

प्रेमयोगी अक्सर कहते थे कि सभ्यता सामूहिक ग्वालापन के अलावा कुछ नहीं है। जब नेता, संस्थाएँ और नागरिक इच्छाओं को भड़काने के बजाय मार्गदर्शन करना सीखते हैं, दमन के बिना संयम, लालच के बिना विकास सीखते हैं, तब सामंजस्य संभव होता है। इसके बिना कोई भी ज़ोर-जबरदस्ती पतन को नहीं रोक सकती।

यह अध्याय समाधान नहीं, एक दृष्टि है। इस दृष्टि से गो-रक्षा उत्तेजक मुद्दा नहीं, उपयोगी औज़ार बन जाती है—आंतरिक अनुशासन, शैक्षिक उपचार, आहार-संयम और डिजिटल जीवन-रक्षा का औज़ार। जीवन की गरिमा लौटाने का औज़ार।

गाय एक बार फिर अपने सही स्थान पर लौटती है—संघर्ष के केंद्र में नहीं, समझ के केंद्र में। और जब समझ लौटती है, तो रक्षा अपने-आप होती है—बिना चिल्लाहट, बिना भय और बिना घृणा के।
यही आधुनिक भारत के लिए गो-रक्षा है।

अध्याय 10 – भीतर की गाय को वापस लाना

जीवन के इस चरण तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमयोगी के लिए गाय केवल एक रूपक नहीं रह गई थी। वह उसके भीतर चलने वाली एक जीवित प्रक्रिया बन चुकी थी। अब कुछ विशेष पाने की लालसा नहीं बची थी, न किसी शिखर को छूने की दौड़। जो शेष था, वह था समन्वय—हर दिन भीतर की गाय के साथ सहज रूप से जीने की कला, बिना संघर्ष, बिना भय और बिना लापरवाही के। यह अध्याय पाठक को प्रभावित करने के लिए नहीं है, बल्कि उसे स्थिर करने के लिए है। यह कुछ नया सिखाने का प्रयास नहीं करता, बल्कि एक सरल सत्य को याद दिलाता है।

प्रेमयोगी समझ चुके थे कि गाय को भीतर वापस लाना किसी बड़े संकल्प या कठोर अनुशासन से नहीं होता। यह छोटे-छोटे, रोज़मर्रा के सजग क्षणों से होता है। गाय तभी लौटती है जब उसे सुरक्षा का अनुभव होता है—जब उसे मारा नहीं जाता, अनदेखा नहीं किया जाता, अधिक काम में नहीं झोंका जाता और अंधभक्ति का विषय भी नहीं बनाया जाता। वह तब लौटती है जब ग्वाला उपस्थित होता है—शांत, स्थिर और बिना घबराहट के। सजगता कोई घटना नहीं है; वह एक वातावरण है। जब यह वातावरण स्थिर और उष्ण हो जाता है, तो इंद्रियाँ स्वाभाविक रूप से भीतर लौट आती हैं।

उसका दैनिक जीवन बाहर से देखने पर बहुत साधारण लगने लगा था। वह दिन की शुरुआत विचारों से लड़कर या मौन को जबरन थोपकर नहीं करता था। सुबह मन को हल्के-से चरने देता था—श्वास, शरीर की अनुभूतियों और सरल गतिविधियों को देखते हुए। वह विचारधारा के आधार पर नहीं, बल्कि ध्यानपूर्वक भोजन करता था—इतना कि शरीर पोषित हो जाए, पर इतना नहीं कि चेतना भारी हो जाए। वह तब बोलता था जब आवश्यक होता था और तब मौन रहता था जब शब्द केवल शोर पैदा करते। काम का समय आता तो पूरी तरह काम करता और विश्राम का अवसर मिलता तो पूरी तरह विश्राम करता। आध्यात्मिक समय और सांसारिक समय का कोई अलगाव नहीं रह गया था। सब कुछ सजग निगरानी में चरना बन गया था। वह संसार में रहते हुए भी अद्वैत से उत्पन्न जागरूकता के साथ जी रहा था।

यहीं से बाहरी चराई धीरे-धीरे भीतरी दुग्ध में बदलती है। चराई आवश्यक है; गाय को खाना ही होगा। इंद्रियों का संसार से संपर्क आवश्यक है। पर जब यह संपर्क संतुलित और सजग होता है, तो अनुभव पचने लगता है। ऊर्जा संचित होती है। ध्यान भीतर लौटता है और अपने साथ पोषण लाता है। यही पोषण दूध है—उत्तेजना या रोमांच नहीं, बल्कि स्पष्टता, शक्ति और शांत आनंद। प्रेमयोगी ने देखा कि लोग या तो बिना चराई के दूध चाहते हैं या बिना लौटे केवल चराई करते रहते हैं। दोनों ही स्थितियाँ हानि लाती हैं। जीवन को टिकाए रखने वाला केवल पूरा चक्र है।

जैसे-जैसे गाय भीतर स्थिर हुई, उसका घर भी बिना प्रयास के बदलने लगा। बातचीत कोमल हो गई। टकराव जल्दी सुलझने लगे। अपेक्षाएँ कम हुईं। सुनना बढ़ा। एक सुरक्षित गाय ने नियंत्रण से नहीं, उदाहरण से शांत परिवार बनाया। जब एक व्यक्ति की इंद्रियाँ संतुलित हो जाती हैं, तो उसके आसपास के लोग भी अनजाने में ढीले पड़ जाते हैं। बेचैनी नहीं, शांति फैलती है। यह नैतिक उपदेश नहीं, बल्कि तंत्रिका तंत्र का अनुनाद है। परिवारों को भाषण नहीं चाहिए; उन्हें एक स्थिर उपस्थिति चाहिए।

प्रेमयोगी ने यही नियम बड़े स्तरों पर भी देखा। जिन परिवारों में आंतरिक अनुशासन था, वे समुदाय संकटों में भी टिके रहे। जिन समुदायों में संयम और स्पष्टता का मूल्य था, वे समाज मानवीय बने रहे। राष्ट्र अंततः घरों का ही विस्तार है। क़ानून व्यवहार को नियंत्रित कर सकते हैं, पर नीयत को केवल जागरूकता ही नियंत्रित करती है। जब सामूहिक रूप से भीतर की गाय खो जाती है, तो कोई संविधान अशांति नहीं रोक

सकता। और जब भीतर की गाय सुरक्षित होती है, तो मतभेदों के बीच भी सामंजस्य अपने-आप उभर आता है। तब असहमति भी संघर्ष नहीं रह जाती, बल्कि एक दिव्य लीला बन जाती है।

वह अक्सर सोचता था कि सभ्यताएँ तकनीक की कमी से नहीं, बल्कि आंतरिक संतुलन की कमी से गिरती हैं। जब नेतृत्व में इंद्रियाँ हावी हो जाती हैं, तो नीतियाँ आवेगपूर्ण हो जाती हैं। जब ध्यान बिकने लगता है, तो सत्य समझौता बन जाता है। वोट-बैंक की राजनीति इसलिए फलती है क्योंकि इंद्रियों को भड़काना सजगता सिखाने से आसान है। निरंतर उत्तेजना ध्यान को बाहर और बेचैन रखती है, जिससे जागरूकता के लिए कोई स्थान नहीं बचता। एक बार सजगता खो जाए, तो इंद्रियाँ स्वयं उन्मत्त हो जाती हैं और आसानी से भटकाई जा सकती हैं। उसी क्षण आंतरिक व्यवस्था टूट जाती है। भीतर का वसिष्ठ लुप्त हो जाता है और उसकी जगह अहंकार व भय से जन्मी शापित शक्ति ले लेती है। विनाश पहले नेताओं के भीतर शुरू होता है और फिर पूरे राष्ट्र में फैल जाता है, क्योंकि राष्ट्र अंततः उन्हीं का प्रतिबिंब होता है जिन्हें वह चुनता है। इस संदर्भ में गाय को बचाना स्मृति-रंजन नहीं, बल्कि अस्तित्व की रक्षा है।

लंबे समय तक भीतर की गायों को चराने के बाद प्रेमयोगी पूर्ण अद्वैत में प्रविष्ट हुआ। बाहर से देखने पर उसकी स्थिति अजीब लगती थी। मस्तिष्क बिना गणना के कार्य करता प्रतीत होता था, मानो बुद्धिहीन हो। देखने वालों को यह मूर्खता लग सकती थी, पर यह मूर्खता नहीं थी—यह विश्राम में स्थित सर्वोच्च बुद्धि थी। पहले उसकी बुद्धि तीक्ष्ण और व्यावहारिक थी, जो अनुशासित चराई से निखरी थी। अद्वैत में प्रवेश के बाद वह शोषण के प्रति खुला हो गया, पर अज्ञानवश नहीं—जानबूझकर, दिव्य लीला का साक्षी बनकर, जब तक वह मानवीय सीमा में रहती। सामाजिक स्तर पर अज्ञान हो सकता था, पर चेतना के स्तर पर कभी नहीं।

उसके जीवन में दो बार बड़े स्तर पर उसका उपयोग किया गया। हर बार वह एक बड़े रूपांतरण का माध्यम बना। जिन लोगों ने ऐसा किया, उन्हें कुछ समय तक लगा कि वे सफल हो गए हैं। बाद में संभव है उन्हें पछतावा भी हुआ हो, यह महसूस कर कि उन्होंने अनजाने में एक निष्कलुष व्यक्ति को सांसारिक उलझनों में घसीट लिया। पर वास्तव में कोई हानि नहीं हुई। जो भी जागरूकता में आया, वह पच गया। जो नष्ट कर सकता था, वही पोषण बन गया। यही अद्वैत की शक्ति है—कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता, कुछ भी अस्वीकृत नहीं होता।

बाद के वर्षों में प्रेमयोगी बहुत कम बोलता था। उसकी शिक्षा उसके चलने, रुकने और बिना अति के प्रतिक्रिया देने में दिखती थी। शारीरिक ऊर्जा घट गई थी, पर भीतर का दूध लगातार बह रहा था। अद्वैत तंत्र सरलता में विलीन हो गया। कर्म उपस्थिति में ढल गया। कुछ छोड़ा नहीं गया; सब कुछ समाहित हो गया। गाय को अब ज़ोरदार पहरे की आवश्यकता नहीं थी। अभ्यास ने उसे परिपक्व बना दिया था। जागरूकता को अपना वास्तविक स्वामी जानकर इंद्रियाँ निष्ठावान हो गई थीं और भीतर बने उस घर में सहजता से लौट आती थीं।

यही इस पुस्तक का अंतिम संदेश है—सरल और अपरिहार्य:

गाय को बचाओ, तो मनुष्य बचता है।

संघर्ष की वस्तु बनी गाय को नहीं, बल्कि आंतरिक जीवन की संरक्षिका बनी गाय को। इंद्रियों की रक्षा करो, तो बुद्धि जीवित रहती है। उन्हें खो दो, तो सबसे उन्नत समाज भी पीछे लौट जाता है।

प्रेमयोगी ने कभी किसी से विश्वास नहीं माँगा। उसने केवल ईमानदार निरीक्षण की प्रार्थना की। देखो ध्यान कहाँ जाता है। देखो अति के बाद थकान कैसे आती है। देखो शांति कैसे बुद्धि को लौटा देती है। प्रमाण तत्काल है, कोई भविष्य का वादा नहीं।

जब गाय घर लौट आती है, तो गौशाला प्रकाश से भर जाती है। अंधकार में कोई सिंह नहीं होता। भागवत की कथा में वह व्यक्ति भय और वासना में बाहर दौड़ा, पोषण को खतरा समझ बैठा और अपने ही आंतरिक स्रोत को नष्ट कर दिया। अंधकार समाप्त नहीं हुआ; और गहरा हो गया। वास्तव में वहाँ कोई सिंह था ही नहीं—केवल घास थी, जो ग्रहण किए जाने की प्रतीक्षा कर रही थी।

हर विचार को घास ही रहने दो। उसे अहंकार के लिए न भीतर का अनाज बनाओ, न बाहर का। नष्ट मत करो। इंद्रियों को उसे हल्के से चरने दो, वह थोड़ी देर जागरूकता को पोषण देगा और फिर स्वाभाविक रूप से विलीन हो जाएगा। पीछे छोड़ देना—अर्थात उसे स्मृति, पहचान या संपत्ति बनाकर आगे मत ढोना।

यह कोई अंत नहीं है।

यह वापसी है।

उपसंहार

गाय की वापसी: जागरूकता ही अंतिम घर

अंत में, कुछ भी नाटकीय नहीं होता।
कोई अंतिम विजय नहीं होती, कोई शत्रु पराजित नहीं होता, कोई संसार त्यागा नहीं जाता।
केवल एक वापसी होती है।

गाय घर लौट आती है।

इसलिए नहीं कि उसे पकड़ लिया गया, अनुशासित किया गया या बलपूर्वक रोका गया, बल्कि इसलिए कि जागरूकता उपस्थित बनी रही। यह वापसी कोई उपलब्धि नहीं थी; यह एक ठहराव था। भटकन नियंत्रण से नहीं, भरोसे से रुकी। गाय ने अपने स्वामी को पहचान लिया, और स्वामी ने स्वयं को पहचान लिया।

इस पूरे ग्रंथ में गाय अनेक रूपों में प्रकट हुई—इंद्रिय के रूप में, ध्यान के रूप में, प्राण के रूप में, मन के रूप में, इच्छा के रूप में, तंत्रिका तंत्र के रूप में, संस्कृति और सभ्यता के रूप में। पर इन सभी रूपों के नीचे अर्थ एक ही रहा: जो बाहर की ओर चलता है, उसे भीतर लौटने दिया जाना चाहिए। जब यह वापसी भूल जाती है, तो जीवन संघर्ष बन जाता है। जब इसे याद रखा जाता है, तो जीवन सहयोग बन जाता है।

जागरूकता ही सदा अंतिम घर थी।

गाय वास्तव में कभी खेत की नहीं थी, न सड़क की, न बाज़ार की, न जंगल की और न ही गौशाला की। वह जागरूकता की थी। खेत चराई के लिए थे, निवास के लिए नहीं। सड़कें चलने के लिए थीं, बसने के लिए नहीं। गौशाला भी कारावास नहीं थी, केवल विश्राम का स्थान थी। घर न बाहर था, न भीतर—घर वह उपस्थिति थी जो देखती रहती है।

जब जागरूकता निरंतर हो गई, तो गाय को बलपूर्वक संभालने की आवश्यकता नहीं रही। अभ्यास ने उसे परिपक्व कर दिया था। निगरानी बनी रही, पर अब उसमें तनाव नहीं था। जागरूकता को अपना सच्चा स्वामी मानकर—सदैव उपस्थित, सदैव कोमल—गाय निष्ठावान हो गई। वह सहजता से, बार-बार, उस भीतर के घर में लौट आती थी, जो उसी जागरूकता से बना था।

उस बिंदु पर कर्म शुद्ध उपस्थिति में ढल गया।

कार्य चलता रहा। जीवन चलता रहा। दायित्व बने रहे। पर कर्तापन का बोझ विलीन हो गया। असहमति भी संघर्ष नहीं रही, बल्कि लीला बन गई—स्थिरता के भीतर गति का दिव्य खेल। कुछ भी दबाने, ठुकराने या बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने की आवश्यकता नहीं रही। हर चीज़ अपने स्थान पर आ गई।

यात्रा की शुरुआत में जो सबसे बड़ा भ्रम था—कि अंधकार में कोई सिंह है—वह अंततः वैसा ही दिखा जैसा वह था। कोई सिंह था ही नहीं। केवल पोषण था, जो ग्रहण किए जाने की प्रतीक्षा में था। अंधकार कोई शत्रु नहीं था; वह केवल प्रकाश की अनुपस्थिति थी। और प्रकाश बल से नहीं आया, वह केवल उपस्थित रहने से प्रकट हुआ।

जब पोषण स्थिर हो गया, तो जीवन संघर्ष नहीं रहा। वह बाहरी संसार और भीतर की जागरूकता के बीच एक शांत सहयोग बन गया।

इसीलिए गाय को बचाना कभी किसी पशु के बारे में नहीं था।
यह मनुष्य को बचाने के बारे में था।

ऐसे मनुष्य के बारे में, जो अपनी इंद्रियों को भय के बिना देख सकता है।
जो चराई को अनुमति देता है, पर लिप्सा में नहीं गिरता।
जो नियंत्रण के नाम पर भीतर के जीवन की हत्या नहीं करता।
और जो स्वतंत्रता के नाम पर भीतर के जीवन को त्यागता भी नहीं।

ऐसा मनुष्य न संसार से भागता है, न उसमें डूबता है।
वह साधारण रूप से जीता है, साधारण रूप से काम करता है, साधारण रूप से प्रेम करता है—
पर सदैव अद्वैत से उत्पन्न सजगता के साथ।
और वही सजगता पर्याप्त है।

गाय लौट आती है।
गौशाला प्रकाश से भर जाती है।
और जागरूकता घर बनी रहती है।

अब कुछ और करने की आवश्यकता नहीं रहती।

लेखक का वक्तव्य

यह पुस्तक किसी विश्वास, उपदेश या सिद्धांत से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष जीवन-अनुभव और निरंतर निरीक्षण से जन्मी है। इसमें प्रस्तुत व्याख्याएँ प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक और अनुभूतिपरक हैं, न कि शाब्दिक या मतवादी। पाठक से यह अपेक्षा नहीं है कि वह इन बातों से सहमत हो; केवल इतना अपेक्षित है कि वह जिज्ञासा के साथ पढ़े।

जो अनुभव के स्तर पर सार्थक लगे, उसे अपनाया जा सकता है। जो न जँचे, उसे सहज रूप से छोड़ दिया जा सकता है। सत्य का दायित्व लेखक पर नहीं है। सत्य की जिम्मेदारी स्वयं जागरूकता की है।

इस पुस्तक को पढ़ने के लिए धन्यवाद।
अधिक जानकारी के लिए कृपया देखें: **demystifyingkundalini.com**
प्रेमयोगी वज्र की अन्य पुस्तकें

1. **शरीरविज्ञान दर्शन: एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)**
2. **कुण्डलिनी विज्ञान: एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान–4**
3. **एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र: एक योगी की प्रेमकथा**
4. **दिव्य मूँछ-पुराण स्तोत्र: व्यंग्यात्मक अध्यात्म के आलोक में**
5. **पुराण पहेली: रूपात्मक अध्यात्मविज्ञान की पराकाष्ठा**
6. **सनातन धर्म: एक जीती-जागती अनुभूति — भीतर की यात्रा और आत्मजागरण**
7. **स्वयंप्रकाशन व वैबसाइट निर्माण की कला**
8. **कुण्डलिनी विज्ञान: एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान**
9. **संभोग से कुंडलिनी जागरण तक: रहस्यात्मक यौनतंत्र की अनसुलझी गुत्थियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण**
10. **कुण्डलिनी विज्ञान: एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान ~ पुस्तक-5**
11. **कुण्डलिनी विज्ञान: एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान [पुस्तक-3]**
12. **ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाइट**
13. **क्वांटम विज्ञान व अंतरिक्ष विज्ञान में योग: विज्ञानांत से योगारम्भ की ओर बढ़ते कदम**
14. **भीष्म पितामह: महायोगी का रहस्य — कुंडलिनी, व्रत और महाभारत की छिपी योगिक शक्ति**
15. **वह जो मेरी गुरु बनी**
16. **तंत्र: ज्ञानों का ज्ञान**
17. **नाचती नागिन: जब ऊर्जा दिशा सीखती है**
18. **विपासना और कुंडलिनी: इक दूजे के लिए**
19. **कुंडलिनी विज्ञान: एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान — निर्विकल्प की यात्रा (पुस्तक-6)**
20. **सांख्य संसार: सांख्य, योग एवं वेदान्त का रोमांचक सम्मिलन — कुंडलिनी जागरण के रूप में प्रकृति-पुरुष का वैवाहिक महोत्सव**
21. **अकेले का नाच: अद्वैत भाव से कुंडलिनी जागरण**
22. **चंद्र-चिकित्सक: पृथ्वी से परे जीवन, चंद्र सभ्यताओं और चेतना की एक यात्रा**
23. **कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित: प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है**
24. **ब्लैकहोल की योगसाधना: एक मेल खाती ब्रह्मांड-कथा**
25. **भीतर की गाय: इंद्रियों, जागरूकता और मुक्ति का शास्त्रीय विज्ञान**
26. **बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल-संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी**

ये सभी पुस्तकें औडियोबुक फोर्मेट में भी उपलब्ध हैं।
इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन, ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप मतलब (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट मतलब (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,"https://demystifyingkundalini.com/ " को निःशुल्क रूप में फोलो करें या इसकी सदस्यता लें।
सर्वत्रं शुभमस्तु